ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮುಕ್ತಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು-೫೭೦ ೦೦೬

KARNATAKA STATE OPEN UNIVERSITY
Mukthagangotri, Mysore - 570 006.

प्रेमचंद और उनका साहित्य
(भाग "अ")

M.A. FINAL HINDI

COURSE / PAPER – V

BLOCK – 1

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University System has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as instrument of democrating education.

National Educational Policy 1986

ವಿಶ್ವ ಮಾನವ ಸಂದೇಶ

ಪ್ರತಿಯೊಂದು ಮಗುವು ಹುಟ್ಟುತ್ತಲೇ – ವಿಶ್ವಮಾನವ, ಬೆಳೆಯುತ್ತಾ ನಾವು ಅದನ್ನು 'ಅಲ್ಪ ಮಾನವ'ನನ್ನಾಗಿ ಮಾಡುತ್ತೇವೆ. ಮತ್ತೆ ಅದನ್ನು 'ವಿಶ್ವಮಾನವ'ನನ್ನಾಗಿ ಮಾಡುವುದೇ ವಿದ್ಯೆಯ ಕರ್ತವ್ಯವಾಗಬೇಕು.

ಮನುಜ ಮತ, ವಿಶ್ವ ಪಥ, ಸರ್ವೋದಯ, ಸಮನ್ವಯ, ಪೂರ್ಣದೃಷ್ಟಿ ಈ ಪಂಚಮಂತ್ರ ಇನ್ನು ಮುಂದಿನ ದೃಷ್ಟಿಯಾಗಬೇಕಾಗಿದೆ. ಅಂದರೆ, ನಮಗೆ ಇನ್ನು ಬೇಕಾದುದು ಆ ಮತ ಈ ಮತ ಅಲ್ಲ; ಮನುಜ ಮತ. ಆ ಪಥ ಈ ಪಥ ಅಲ್ಲ ; ವಿಶ್ವ ಪಥ. ಆ ಒಬ್ಬರ ಉದಯ ಮಾತ್ರವಲ್ಲ; ಸರ್ವರ ಸರ್ವಸ್ತರದ ಉದಯ. ಪರಸ್ಪರ ವಿಮುಖವಾಗಿ ಸಿಡಿದು ಹೋಗುವುದಲ್ಲ; ಸಮನ್ವಯಗೊಳ್ಳುವುದು. ಸಂಕುಚಿತ ಮತದ ಆಂಶಿಕ ದೃಷ್ಟಿ ಅಲ್ಲ; ಭೌತಿಕ ಪಾರಮಾರ್ಥಿಕ ಎಂಬ ಭಿನ್ನದೃಷ್ಟಿ ಅಲ್ಲ; ಎಲ್ಲವನ್ನು ಭಗವದ್ ದೃಷ್ಟಿಯಿಂದ ಕಾಣುವ ಪೂರ್ಣದೃಷ್ಟಿ.

ಕುವೆಂಪು

Gospel of Universal Man

Every Child, at birth, is the universal man. But, as it grows, we trun it into "a petty man". It should be the function of education to turn it again into the enlightened "universal man".

The Religion of Humanity, the Universal Path, the Welfare of All, Reconciliation, the Integral Vision - these ***five mantras*** should become View of the Future. In other words, what we want henceforth is not this religion or that religion, but the Religion of Humanity; not this path or that path, but the Universal Path; not the well-being of this individual or that individual, but the Welfare of All; not turning away and breaking off from one another, but reconciling and uniting in concord and harmony; and above all, not the partial view of a narrow creed, not the dual outlook of the material and the spiritual, but the Integral Vision of seeing all things with the eye of the Divine.

Kuvempu

द्वितीय एम.ए. - कोर्स पाँच

भाग - 'अ'

Course - V, Paper - V

1

"प्रेमचंद और उनका साहित्य"

विशेष लेखक 'प्रेमचन्द'

Unit No. 1 to 4		Page No.
अनुक्रमणिका		

इकाई 01	उपन्यास का उद्‌भव और विकास	1 - 34
इकाई 02	प्रेमचंद की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व	35 - 66
इकाई 03	उपन्यास 'प्रतिज्ञा' - एक विवेचन	67 - 82
इकाई 04	'प्रतिज्ञा' उपन्यास में चित्रित प्रमुख पुरुष और स्त्री पात्र तथा आलोचना	83 - 126

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो. एम.जी. कृष्णन्
उप–कुलपति तथा अध्यक्ष
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय
मैसूर–६

प्रो. एस.एन. विक्रर्म राज अरर्स
डीन (शैक्षणिक) - संयोजक
क.रा.मु.वि. विद्यालय
मैसूर - 6

बी.जी.चन्द्रलेखा संयोजिका
पुर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क.रा.मु.वि.विद्यालय, मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

पाठ्यक्रम की लेखिका तथा संपादिका

डॉ.प्रतिभा मुदलीयार
रीडर, हिन्दी विभाग
मैसूर विश्वविद्यालय, मानस गंगोत्री
मैसूर - 6.

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर, शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित । सभी अधिकार सुरक्षित । कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किसी भी रूप में अनुलिपित या किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है ।

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से रजिस्ट्रार
द्वारा मुद्रित व प्रकाशित ।

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थी,

कोर्स - एक से **कोर्स - चार** तक आपने प्राचीन काव्य, मध्यकालीन काव्य तथा भाषा का इतिहास, भाषा विज्ञान, पाश्चात्य तथा भारतीय काव्य मीमांस के बारे में अध्ययन किया और जानकारी भी प्राप्त कर लीं ।

अब **कोर्स - पाँच** में दो विषय अध्ययन के लिए रखा है ।

भाग 'अ' - विशेष लेखक 'प्रेमचंद'

भाग 'आ' - हिन्दी पत्रकारिता

आप **भाग 'अ'** अथवा **भाग 'आ'** को विशेष अध्ययन के लिए चुन सकते है ।

अब **भाग 'अ'** में हिन्दी के सुप्रसिद्ध आधुनिक लेखक उपन्यास सम्राट **'प्रेमचंद'** के बारे में कुल मिलाकर 32 इकाई अध्ययन करने जा रहे हैं ।

भाग 'आ' में तीन उपन्यास - प्रतिज्ञा, गोदान तथा गबन अध्ययन करेंगे । साथ में 'मानसरोवर भाग-1' की कहानियाँ और निबंध के बारे में अध्ययन करेंगे । तदनंतर प्रेमचंद जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकार और साहित्य से परिचित भी होंगे ।

अब **ब्लाक - एक** में आप उपन्यास का उद्‌भव और विकास, प्रेमचंद की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व, उपन्यास 'प्रतिज्ञा' - एक विवेचन तथा उपन्यास में चित्रित प्रमुख पुरुष और स्त्री पात्र तथा आलोचना के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे ।

शुभकामनाओं के साथ,

आपका गुरु
डॉ. कांबले अशोक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क.रा.मु.वि. विद्यानिलय
मानस गंगोत्री, मैसूर – ६.

इकाई एक : उपन्यास का उद्‌भव और विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0. उद्देश्य

1.1. प्रस्तावना

1.2. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास

1.3. विकास की प्रथम अवस्था - जन्म की अवस्था

1.4. द्वितीय अवस्था (1900 से 1915 तक)

1.5. तृतीय अवस्था (1915 से 1936 तक)

1.6. आधुनिक काल (1936 से अब तक)

1.7. उपन्यास के भेद

- 1.7.1. घटना प्रधान उपन्यास
- 1.7.2. चरित्र प्रधान उपन्यास
- 1.7.3. नाटकीय उपन्यास
- 1.7.4. ऐतिहासिक उपन्यास
- 1.7.5. सामाजिक उपन्यास
- 1.7.6. उपन्यास कैसा हो ?

1.8. मनोवैज्ञानिक उपन्यास

- 1.8.1. यथार्थवादी उपन्यास
- 1.8.2. आँचलिक उपन्यास

1.9. प्रगतिवादी विचाराधारा

1.9.1. उपन्यास के महत्व और तत्व

1.9.2. 'उपन्यास' शब्द की व्युत्पत्ति

1.10. उपन्यास के तत्व

1.10.1. कथानक

1.10.1.1. वर्णनात्मक शैली

1.10.1.2. आत्मकथात्मक शैली

1.10.1.3. पात्रात्मक शैली

1.10.1.4. डायरी शैली

1.10.1.5. शिथिल-वस्तु उपन्यास

1.10.1.6. संगठित-वस्तु उपन्यास

1.11. चरित्र-चित्रण

1.11.1. चरित्र-चित्रण की विधि

1.11.2. चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ और गुण

1.11.2.2.1. अनुकूलता

1.11.2.2.2. स्वाभाविकता

1.11.2.2.3. सप्राणता

1.11.2.2.4. सहृदयता

1.11.2.2.5. मौलिकता

1.12. कथोपकथन

1.12.1. उपयुक्तता

1.12.2. अनुकूलता

1.12.3. सम्बद्धता

1.12.4. स्वाभाविकता

1.12.5. संक्षिप्तता

1.13. देशकाल अथवा वातावरण

1.14. शैली

1.15. उद्देश्य

1.16. शीर्षक

1.17. प्रेमचन्द्र युगीन तथा अन्य उपन्यासकार

1.18. बोध प्रश्न

1.0. उद्देश्य

कोर्स-I से कोर्स-IV तक आपने प्राचीन काव्य, मध्यकालीन काव्य तथा भाषा का इतिहास, भाषा विज्ञान, पाश्चात्य तथा भारतीय काव्य मीमांस के बारे में अध्ययन किया । अब कोर्स-v में विशेष लेखक **'उपन्यास सम्राट प्रेमचंद'** के बारे में अध्ययन करेंगे । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप उपन्यास का उद्‌भव और विकास के बारे में जान सकेंगे । इसके अलावा मनोवैज्ञानिक उपन्यास, यथार्थवादी उपन्यास, आँचलिक उपन्यास, प्रगतिवादी उपन्यास के बारे में अध्ययन करेंगे तथा जानकारी भी प्राप्त करेंगे ।

1.1. प्रस्तावना

इस इकाई में **'प्रेमचंद'** को विशेष रूप से अध्ययन करने जा रहे है । प्रेमचंद के अध्ययन के पूर्व आप उपन्यास के विकास के बारे में अध्ययन करेंगे । इस इकाई में आप आधुनिक साहित्य के एक सशक्त विधा उपन्यास के विविध आयाम सविस्तार अध्ययन करने जा रहे हैं ।

1.2. हिन्दी उपन्यास - उद्‌भव और विकास

हिन्दी गद्य साहित्य का जितना विकास आधुनिक युग में हुआ है, उतना अन्य किसी युग में नहीं । गद्य साहित्य का अनेक विधाओं में - जैसे, निबंध, कहानी, संस्मरण, नाटक एकाँकी तथा गद्य-काव्य आदि का प्रादुर्भाव आधुनिक युग में हुआ है, इस प्रकार हम 'उपन्यास साहित्य' को आधुनिक युग की देन मान सकते है ।

हिन्दी साहित्य में उपन्यास का आविर्भाव आधुनिक काल में हुआ । आधुनिक युग में 'उपन्यास' एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशिष्ठ विधा है ।

उपन्यास बीते जीवन का 'इन्डेक्स' बन जाता है और आनेवाली जीवन की भूमिका भी । उपन्यास का यह दोहार-क्रम बीज और फसल का रूप होता है । हम जीवन में रहते हुए भी जीवन के धरातल पर ही तैरते रहते हैं, पर उपन्यास में हम डुबकी लगाकर जीवन के भीतर पहुँचते हैं जहाँ पर जीवन का असली रूप मिलता है ।

हम उपन्यास में जीवन-निर्माण की संभावना भी पाते हैं । इसके अलावा उपन्यास में जीवन में खुली हुई गठरी को बाँधने की शक्ति भी है । उपन्यास बिखरे हुए जीवन को भी समेटता है ।

कुछ विद्वान और आलोचक उपन्यास साहित्य को आधुनिक युग की देन मानते हैं । कुछ आलोचक संस्कृत के 'कादम्बरी', 'दशकुमार चरित्र' आदि कथा ग्रंथों को भी उपन्यास मानते है और इनके मतानुसार हिन्दी उपन्यासों की परंपरा का संबंध उन्हीं से जोड़ देती हैं । कुछ आलोचकों के अनुसार हिन्दी उपन्यासों की परंपरा का आरंभ सूफी कवियों के प्रेमाख्यानक काव्य ग्रंथों से मानते हैं परंतु उस ग्रंथों की ध्यान पूर्वक देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें औपन्यासिक तत्वों का पूर्ण अभाव है । अतः हम उन्हें उपन्यास नहीं मान सकते । वे सिर्फ कथा-ग्रंथ मात्र हैं । यहाँ हम ध्यान में रखना चाहिए कि कथा-प्रधान सभी लंबी रचनाओं को उपन्यास नहीं माना जा सकता । इसलिए ये माना जा सकता है कि - "संस्कृत के प्राचीनतम काव्य से लेकर आधुनिक हिन्दी-काव्य तक की परंपरा अविच्छिन्न चली आई है । परंतु हिन्दी का उपन्यास, साहित्य का वह पौधा है, जिसे यदि सीधे पश्चिम से नहीं लिया गया हो, तो उसका कलम बंगला से तो लिया ही गया था ; न कि संस्कृत के कथाकार सुबंधु, दंडी और बाण की परंपरा पुनरुज्जीवित की गई थी ।"

बंगला-उपन्यास अपने आरंभिक रूप में अंग्रेजी उपन्यास साहित्य से प्रेरित था, इसलिए आरंभिक हिन्दी उपन्यासों पर शिल्प

की दृष्टि से प्रत्यक्ष रूप से न सहीं, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी उपन्यास का प्रभाव कार्य कर रहा था । हिन्दी साहित्याकाश में जब भारतेन्दु हरिश्चंद्र का अवतरण हुआ, तब उनकी दृष्टि उपन्यास की ओर पड़ी और उनके प्रोत्साहन से कितने ही बंगला उपन्यासों का अनुवाद हुआ और मौलिक उपन्यास भी लिखे गए । यद्यपि भरतेन्दु स्वयं संपूर्ण मौलिक उपन्यास लिख न सके फिर भी उन्होंने हिन्दी उपन्यास के लिए भूमि अवश्य प्रस्तुत की । हिन्दी उपन्यास-साहित्य का जनक गद्य के अन्य अंगों के समान ही **भारतेन्दु** ही है ।

प्रारंभ में लिखे हुए उपन्यासों में और आधुनिक युग में लिखे उपन्यासों में हमें पर्याप्त भेद मिलता है । जिस प्रकार कोई पौधा तुरंत ही परिपक्वता को प्राप्त नहीं कर लेता, उसका विकास क्रमशः होता है । उसी प्रकार उपन्यास साहित्य का विकास धीरे-धीरे हुआ । उपन्यास का विकास सुविधा के लिए चार खण्डों में या चार अवस्थाओं में विभक्त कर सकते हैं -

1. प्रथम अवस्था - सन् 1850 से 1900 तक
2. द्वितीय अवस्था - सन् 1900 से 1915 तक
3. तृतीय अवस्था - सन् 1915 से 1936 तक
4. आधुनिक काल - सन् 1936 से अब तक

1.3. विकास की प्रथम अवस्था - जन्म की अवस्था

हिन्दी गद्य के आविर्भाव के साथ-साथ उपन्यासों का उद्‌भव भी हुआ । कुछ आलोचक 'इंशा अल्लाखाँ' से रचित **'रानी केतकी की कहानी'** हिन्दी का सर्व प्रथम उपन्यास मानते है । कुछ अन्य आलोचक **'रानी केतकी की कहानी'** में उपन्यास के प्रमुख तत्वों एवं लक्षणों के अभाव के कारण इसको उपन्यास नहीं मानते हैं । आचार्य रामचन्द्रशुक्लजी, लाला श्रीनिवासदास कृत **'परीक्षा गुरु'** को ही हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास मानते है । शुक्लजी का कहना है कि ''और लोगों ने भी उपन्यास लिखा पर वे वास्तव

में उपन्यासकार न थे और चीजे लिखते-लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पड़ते हैं । पर गोस्वामीजी वहीं घर करके बैठ गए ।''

आजकल **'परीक्षा गुरु'** ही सर्व सम्मति से हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता हैं । आधुनिक अर्थ में यही पहला उपन्यास था, जिसमें हमें सर्वप्रथम सामाजिक जीवन को चित्रित करने का प्रयास मिलता है ।

बाबा हरिश्चन्द्र ने भी **'परीक्षा गुरु'** से पूर्व **'हमीर हठ'** नामक उपन्यास लिखना आरंभ किया था जो पूर्ण न हो सका । भारतेन्दु कालीन लेखक बालकृष्ण भट्ट ने भी कुछ उपन्यास लिखे । भट्टजी के उपन्यासों में हास्य एवं व्यंग्य का भी पुट मिलता है । इनके उपन्यासों में **''सौ अजान और एक सुजान''** मुख्य है । इसी बीच में बाबा रायकृष्ण ने **'निस्सहाय हिन्दू'** नामक उपन्यास की रचना की । वस्तुतः भारतेन्दु युग में उपन्यासों की अपेक्षा नाटकों की अधिक रचना हुई । उपन्यासों का यह बाल्य काल था ।

भारतेन्दु युग में अनुवादों की परंपरा बहुत प्रचलित हुई । मौलिक उपन्यासों को लिखने की अपेक्षा बंगला और अंग्रेजी उपन्यासों के हिन्दी में अनुवाद किए गए । भारतेन्दु जी से प्रेरित होकर गजाधरसिंह, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र आदि अनेक उपन्यासकारों ने बंगला से हिन्दी में अनुवाद किए और अनुवादों से ही मौलिक हिन्दी उपन्यास लिखने की प्रेरणा उपन्यासकारों को प्राप्त हुई ।

1.4. द्वितीय अवस्था - (1900 से 1915 तक)

यह काल या इस अवस्था में उपन्यासों की विविधता के लिए प्रसिद्ध है । इस काल में भी कुछ आंग्ल और बंगला उपन्यासों का अनुवाद भी हुआ, साथ ही कुछ मौलिक रचनाएँ भी लिखी गई । मौलिक उपन्यासों में ऐतिहासिक, सामाजिक तथा भावप्रधान ज्यादा थी लेकिन जीवन की समस्याएँ इन उपन्यासों में

न थीं, जो आधुनिक उपन्यासों में मिलती है । इस द्वितीय अवस्था को उपन्यास के **'विकास काल'** नाम से अभिहित किया जाता है । इन उपन्यासों में नितान्त और गंभीरता का अभाव है ।

राधाकृष्ण वर्मा, कार्तिक प्रसाद खत्री, गोपालदास गहमरी राधाचरण गोस्वामी, हरिकृष्ण जौहर आदि ने अन्य भाषा के उपन्यासों को हिन्दी में अनुवाद किया ।

अनूदित उपन्यास इस प्रकार हैं - 'अकबर' ठग वृत्तान्त 'माला', 'अबला', 'चितौड़ चातकी' वर्मा की हैं - गोपाल राम ने 'भानुमती', 'चतुर चंचलता', 'बड़े भाई', का अनुवाद किया । कार्तिक प्रमादजी ने 'इला', 'प्रमिला' का हिन्दी में अनुवाद किया ।

'रामकाका' की **'कुटिया'**, **'लंदन'**, **'रहस्य'** आदि अंग्रेजी से हिन्दी में किए लिए अनुवाद हैं ।

इस द्वितीय अवस्था में कतिपय मौलिक उपन्यास भी लिखे गए । देवकीनंदन खत्री इस युग के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार थे । इनके **'चन्द्रकान्ता'** तथा **'चन्द्रकान्ता संतती'** उपन्यासों से युग प्रवर्तन हुआ । खत्रीजी से रचित उक्त उपन्यासों को पढ़ने के लिए अनेक अन्य भाषा-भाषियों ने हिन्दी सीखीं । हृदय से जनता ने इन उपन्यासों का स्वागत किया । **ऐय्यरी** और **जासूसी** से भरपूर घटना-वैचित्र्य के अतिरिक्त और अधिक कुछ इन उपन्यासों में नहीं । आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी इन उपन्यासों को साहित्य की कोटी में नहीं माना है । लेकिन जो कौतूहल और घटना वैचित्र्य इन उपन्यासों में मिलती है अन्यत्र दुर्लभ है ! देवकीनंदन खत्री के उपन्यासों को पढ़कर अनेक पाठक उपन्यासकार बन गए ।

इस काल में कुछ सामाजिक तथा कतिपय **जासूसी** और **ऐतिहासिक मौलिक** उपन्यासों की भी रचना हुई । किशोरीलाल गोस्वामी ने **'तारा' चपला, रजिया बेगम'** आदि अनेक मौलिक

उपन्यासों की रचना की । हरिऔध जी ने भी इसी युग में कुछ मौलिक उपन्यास लिखे । उनके **'ठेठ'** और **'ठाठ'** तथा **'अधखिल फूल'** ऐसे हिन्दी उपन्यास हैं जिनसे खड़ीबोली के विकास में पर्याप्त सहायता मिली ।

1.5. तृतीय अवस्था (1915 से 1936 तक)

इस काल में हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का अभूतपूर्ण विकास हुआ । नलिनविलोचनाशर्मा का कहना है कि **'समृद्धि और ऐश्वर्य** की सभ्यता महाकाव्य में अभिव्यंजना पाती है ; जटिलता, वैषम्य और संघर्ष की सभ्यता उपन्यास में ।'' उपन्योस के इस प्रकार भी कहा गया है कि - ''उपन्यास औद्योगिक क्रान्ति के युग का महाकाव्य'' है । यूरोप में भी औद्योगिक क्रान्ति के कारण उत्पन्न नई सामाजिक चेतना ने उपन्यास को जन्म दिया था । इस तृतीय अवस्था में उपन्यास-कहानी-साहित्य ही सबसे अधिक समृद्ध हुआ । भारतेन्दु युग में सामाजिक उथल-पुथल आरंभ हुई थी, लेकिन उसका पूर्ण विकास द्विवेदी युग और छायावादी युग में आकार हुआ । प्रथम विश्व युद्ध के लग भग हमारे साहित्यकार देश और समाज की समस्याओं के प्रति अधिक सचेत हो उठे । युद्ध की सहायतार्थ देश नए-नए उद्योग-धंधे खड़े किए जिनमें व्यापारी वर्ग में समृद्धि ने देश के नागरिक जीवन में कई जटिलताएँ कर दी । सामाजिक सुधार और स्वतंत्रता की भावनाएँ जोर पकड़ने लगी । देश में एक नई क्रांतिकारी चेतना उभरने लगी । **उपन्यास सम्राट प्रेमचंद** इस नवीन क्रांतिकारी चेतना के अग्रदूत बन कर उपन्यास क्षेत्र में आए । प्रेमचंद को ही वास्तविक हिन्दी उपन्यास के जन्म-दाता के रूप में स्वीकार करना चाहिए । प्रेमचंद अपने उपन्यासों में यथार्थ और आदर्श का वह चित्रण किया है जो एक ओर हमें उच्च आदर्शों की ओर प्रेरित करता है तो दूसरी ओर वास्तविकता में भी दूर नहीं कर देता । प्रेमचंद के उपन्यासों की विशेषता यही कि उनमें घटना के साथ-साथ चरित्र-चित्रण को भी उतना ही महत्व दिया है । उन्होंने मध्य वर्ग का यथार्थ एवं सजीव

चित्रण किया है । इसके अलावा उनके उपन्यासों में कहीं-कहीं राष्ट्रीयता की भावना भी मिलती हैं । उन्होंने समाज को देखा, गावों को देखा था और वहाँ की दुर्बलताओं को भली-भाँति परखा था । समाज के कृषक और मजदूर वर्ग से भी भली-भाँति परिचित थे । इसी कारण है कि प्रेमचंद के उपन्यास हिन्दी साहित्य का सम्मान बन गए है । समाज की बुराइयों का यथार्थ चित्रण उनके उपन्यासों में मिलती है किंतु उनमें कहीं भी अश्लीलता नहीं आने दी । प्रेमचंदजी के उपन्यासों में **'सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन, कर्मभूमि, निर्मला, तथा गोदान'** उल्लेखनीय है । प्रेमचंद के उपन्यासों में इस युग का राजनीतिक और सामाजिक भारत सरकार हो उठा । इसलिए कहा गया कि - **''गोदान के रचयिता प्रेमचंद हिन्दी के वर्तमान और भविष्य के निर्देशक है । प्रेमचंद उस शिखर के समान है, जिसके दोनों ओर पर्वत के दो भागों के उतार-चढ़ाव है ।''**

इस युग में प्रेमचंद के अतिरिक्त अन्य उपन्यासकारों की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं । इस काल में जयशंकरप्रसाद, उग्र, प्रतापनारायण, श्रीवास्तव, भगवतीचरण वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावनलाल वर्मा आदि प्रमुख हैं ।

1.6. आधुनिक काल (1936 से अब तक)

सन् 1936 से प्रेमचंद की मृत्यु के पश्चात् उपन्यास साहित्य का भविष्य कुछ निराशाजनक प्रतीत होने लगा, किन्तु उस समय तक कुछ प्रतिभाशाली नवयुवक हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में चरण बढ़ा रहे थे । प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासकार दो प्रमुख धाराओं में बैठ गए । एक है - मनोवैज्ञानिक विचारधारा और दूसरी-प्रगतिवादी विचारधारा । प्रेमचंद की परवर्ती उपन्यास-साहित्य का सिंहावलोकन करते हुए प्रकाश चन्दुगुप्त ने लिखा है कि - **''प्रेमचंद की किसान परंपरा को उतरकर हिन्दी-उपन्यास अनेक नई शाखाओं में बढ़ा-तत्व और रूप-दोनों की दृष्टि से । एक धारा**

निम्न मध्यवर्ग के जीवन, उसकी निराशाओं और सफलताओं को अपनाती है ।'' इसके प्रमुख परिचायक - जैनेन्द्र, भगवतीप्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि हैं - दूसरी धारा व्यक्तिवादी, अहंवादी नशावादी दृष्टिकोण को अपनाती है । इसके प्रतिनिधि भगवतीचरण वर्मा, अज्ञेय आदि हैं । एक धारा मनोविश्लेषणशास्त्र के प्रभाव में कुंठित अतृप्त वासनाओं की अभिव्यक्ति करती है । इसके प्रमुख प्रतिनिधि - पं.इलाचंन्द्रजोशी रहे है । एक अन्य धारा भारतीय श्रमजीवि वर्ग का अग्रगामी शक्तियों से संबंध जोड़ता है और भविष्य की धरती को सँजोती है । इसके प्रमुख प्रतिनिधि - यशपाल, राँगेयराघव, पहाड़ी, भगवतशरण उपाध्याय, नागार्जुन अमृतलाल नागर आदि हैं ।''

1.7. उपन्यास के भेद

भिन्न-भिन्न विद्वानों ने तत्व, वर्ण्य-विषय, शैली, आदि सभी विशेषताओं को दृष्टि में रखकर उपन्यासों के छः प्रमुख विभाग किये है । 1. घटना-प्रधान, 2.चरित्र-प्रधान, 3.नाटकीय, 4. ऐतिहासिक, 5. सामाजिक, 6. उपन्यास कैसा हो !

1.7.1. घटना-प्रधान

ये उपन्यास घटनाओं की प्रधानता से युक्त होते हैं । घटनाओं का साफल्य पाठकों के कौतूहल और औत्सुक्य को जाग्रत करने में ही होता है । इसमें पात्रों का महत्व कथा की अपेक्षा गौण रहता है । पात्र घटनाओं के चक्कर में चमत्कारपूर्ण ढंग से उनमें से बाहर निकल आते हैं । घटनाओं के आरोह-अवरोह में पाठक पात्र को पूर्णतया भूल जाता है, इसलिए इन उपन्यासों में पात्रों का चारित्रिक विकास विशेष महत्व नहीं रखता है । ऐसे उपन्यासों में वास्वविकता न होकर काल्पनिक एवं चमत्कारपूर्ण जीवन ही प्राधान्य रहता है । इनके वर्ण्य-विषय प्रेमाख्यान, जासूसी तथा तिलस्मी घटनाओं से लिये जाते हैं । हिन्दी के प्रारम्भिक युग में

ऐसे ही उपन्यासों की भरमार थी । 'चन्द्रकांता संतति', 'भूतनाथ' आदि इसी श्रेणी के हैं ।

1.7.2. चरित्र-प्रधान

इनमें घटनाएँ गौण होती हैं तथा पात्रों की प्रधानता रहती है । चरित्र की प्रधानता के कारण उनका कथानक शिथिल होता है । पात्रों के चारित्रिक विकास पर ही पूर्ण ध्यान दिया जाता है । पात्र घटनाओं से पूर्ण मुक्त होते हैं । परिस्थितियों के निर्माण में पात्रों का पूर्ण हाथ होता है । घटनाएँ केवल पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर ही प्रकाश डालती हैं । कौतूहल का अभाव रहता हैं । ये उपन्यास समाज, देश, जाति की चारित्रिक विशेषताओं का प्रदर्शन करते हैं । अतः घटना प्रधान उपन्यासों से इनका महत्व अधिक माना गया है । हिन्दी में जैनेन्द्र और चतुरसेन शास्त्री के उपन्यास इसी कोटि के अंतरगत आते हैं ।

1.7.3. नाटकीय

नाटकीय उपन्यास सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहलाते हैं । इनमें कथावस्तु और पात्र दोनों का समान समन्वय रहता है । यदि पात्र भावी घटनाओं को पूर्ण प्रभावित करते हैं, तो घटनायें भी पात्रों में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के प्रति जिम्मेदार होती हैं । दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध होते हुए भी दोनों स्वतंत्र होते हैं । इसके अतिरिक्त इनमें कल्पित जीवन न होकर वास्तविक सामाजिक जीवन का चित्रण होता है । इसलिये इन उपन्यासों की कथावस्तु सूत्रदत् स्वतः ही अग्रसर होती रहती है । समय की गति भी इनमें पूर्ण प्रभाव डालती है । प्रेमचंद के उपन्यास इसी कोटि में आते हैं ।

1.7.4. ऐतिहासिक

इन उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता देश-काल का चित्रण है । इनमें भी नाटकीय उपन्यासों की भाँति पात्रों एवं घटनाओं का समन्वय मिलता है । देशकाल के पूर्ण चित्रण के अभाव में ये

उपन्यास मूल्यहीन समझे जाते हैं । देश-काल के वर्णन से अभिप्राय यह है कि जिस देश या काल का वर्णन हो, वह यथार्थ एवं उचित होना चाहिए । जापान को आज्पस पर्वत पर बताना, पृथ्वीराज के समय कोट-पैन्ट की वेश-भूषा आदि का चित्रण देश-काल का विरोध होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं । इन उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का पूर्ण योग रहता है । इनमें से एक की भी अनुपस्थिति सफल ऐतिहासिक उपन्यास की रचना में बाधा डाल सकती है । ऐतिहासिक उपन्यास का इतिहासकारों, पुरातत्व-वेत्ताओं आदि द्वारा संग्रहीत नीरस तथ्यों को कल्पना द्वारा सुन्दर और प्राणभय बना देता है ।

1.7.5. सामाजिक

कुछ विद्वान एक और वर्ग को मानने लगे हैं, जिसमें सामाजिक उपन्यास आते हैं । इनमें सामाजिक विचार, आदर्श और समस्याएँ चित्रित होती हैं । इसमें लेखक अपने समय के आदर्शों के अनुकूल ही पात्रों का चित्रण करता है । आज के प्रगतिवादी लेखकों के अधिकांश उपन्यास तथा प्रेमचंद के कुछ उपन्यास इसी कोटि में सम्मिलित किये जा सकते हैं ।

1.7.6. उपन्यास कैसा हो ?

उपन्यासकार के लिए उपन्यास से संबंधित सभी सामग्री इस विश्व में प्राप्त है । लेकिन उन सभी प्राप्य-सामग्रियों को एकत्र कर ऐसी दिशा में प्रवाहित करना जिससे कि समाज एवं राष्ट्र का कल्याण हो सके, कुछ ही व्यक्तियों के वश का काम है । उपन्यासकार में सबसे बड़ी विशेषता तो यह होनी चाहिए कि उपन्यास रचना से पूर्व वह उन परिस्थितियों का जिनका कि अपने उपन्यास में वर्णन करना चाहता है, भली प्रकार समाज में रहकर अवलोकन कर लें । व्यावहारिकता से शून्य लेखकों के प्रयास साहित्य के लिए बोझ होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं । जो कुछ भी वह समाज में देखे, उसी का अपनी लेखनी द्वारा सुन्दर चित्रण

प्रस्तुत कर दें । लेकिन ऐसा करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कहीं उस वर्णन में अनर्गलता तथा उच्छृंखला का समावेश न हो जाय । उसकी लेखनी में सच्चाई एवं पवित्रता का पूर्ण समावेश होना चाहिए । इन सबसे महत्वपूर्ण विषय समाज एवं राष्ट्र-कल्याण सर्वोपरि रहे और यही उसका उद्देश्य होना चाहिए ।

उपन्यासकार को वास्तविकता से मुख नहीं मोड़ना चाहिए । आज के युग में समाज एवं देश की वास्तविक स्थिति चित्रण करने की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव हुई है । देश में कांग्रेसी सरकार बनी, पंचायत राज्य कानून बने, सहकारी खेती आदि भिन्न-भिन्न पहलू हैं, लेकिन वस्तु स्थिति कैसी है, वह बात हम केवल उपन्यासों के माध्यम से ही जान सकते हैं । सच्चे उपन्यासकार का परम कर्तव्य है कि स्वार्थी व्यक्तियों को जिन्होंने राष्ट्र एवं समाज को ताक पर रख दिया है, अपनी संयमित वाणी से उद्‌बुद्ध करें । कोरा आदर्शवाद उपन्यास के लिए उचित नहीं उसमें यथार्थ का पूरा मिश्रण होना चाहिए । प्रेमचन्द जी को आज विश्व-उपन्यासकार इसलिए माना जाता है, क्योंकि उन्होंने अपने उपन्यासों में यथार्थादर्श का सच्चा सामंजस्य स्थापित किया है ।

किन्तु आजकल कुछ ऐसे उपन्यासों की बाढ़ जैसी आ गई है, जो केवल पैसा कमाने की दृष्टि से ही लिखे जाते हैं । वास्तव में ऐसे उपन्यासकार समाज का कोई भी कल्याण नहीं कर सकते, किंतु इसका अभिप्राय यह नहीं कि सभी इसी श्रेणी में आते हैं । आज अधिकांश उपन्यासकारों में एक बात की सबसे बड़ी कमी रहती है कि वह पक्के समाज-सेवी नहीं होते । इसी कारण उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती । समाज-सेवी ही सच्चा उपन्यासकार हो सकता है । प्रेमचंद के उपन्यासों का यदि कोई महत्व था तो सर्वप्रथम यही कि वे समाज की वास्तविक स्थिति का दिग्दर्शन कराकर समाज की सच्ची सेवा करना तथा करवाना दोनों ही चाहते थे ।

1.8. मनोवैज्ञानिक उपन्यास

मनोवैज्ञानिक विचारधारा से प्रभावित उपन्यासकार जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा, इलाचन्द्र जोशी आदि हैं । यह धारा मनोविश्लेषण शास्त्र के प्रभाव में कुंठित, अतृप्त वासनाओं को अभिव्यक्त करती है । जैनेन्द्र की **परख, तपोभूमि, सुनीता, त्यागपत्र** और **कल्याणी** मनोवैज्ञानिक धारा से प्रभावित उपन्यास है । फ्रायड आदि यौन संबंधी विचारकों से प्रभावित होकर इलाचंन्द्र जोशी ने **'ते और छाया'**, **'परदे की रानी'**, **घृणामयी** आदि उपन्यास लिखे हैं ।

जैनेन्द्र के उपन्यासों के पात्रों में मनोवैज्ञानिक ढंग से परिस्थितियों का परिज्ञान करने की क्षमता है जिससे ये असामान्य परिस्थितियों में भी अपना संतुलन नहीं खोते और एक दार्शनिक की मनःस्थिति ग्रहण कर लेते है । इसके अलावा उनके उपन्यासों में 'सेक्स' उभरता है, किन्तु उसका मार्ग प्रशस्तकर दिया जाता है जिस पर चलकर वह औदार्य, सहिष्णुता और आध्यात्म की मधुर भाव भूमि में परिणित हो जाता हैं उनके उपन्यास, **वितर्त सुनीता** और **सुन्दर** निदर्शन हैं ।

भगवतीचरण वर्मा के उपन्यास नैतिकता और मनोविज्ञान के समन्वित रूप हैं । वर्माजी ने अपने **चित्रलेखा** नामक उपन्यास में पाप-पुण्य प्रवृत्ति आदि संघर्षों की परंपरित परिभाषाओं को जो अभिनव संदर्भ दिए है, उनसे उसकी सबल लेखनी एवं प्रतिभा का परिचय मिलता है । **''टेढे-मेढे रास्ते''**, **तीन वर्ष**, **'आखिरी दाव'** और **'भूले-विसरे चित्र'**, इनके प्रमुख उपन्यास हैं । इसके अलावा श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वर्णन तथा यौन कुण्ठाओं का वातावरण मुखर है । इनके प्रसिद्ध उपन्यासों में **'मीठी-चुटकी'**, **अनाथ पत्नी प्रेम पथ**, **ललिमा**, **पिपास**, **तीन बहनें**, **पतिता की साधना** और **'गुप्त धन'** आदि है ।

मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास इस क्षेत्र के उपन्यासकारो अज्ञेयजी का व्यक्तित्व अधिक विवादास्पद है । कहीं वे यथार्थ क अतिरूप ग्रहण करते हैं तो कहीं अस्तित्व का और कहीं अहम् क सर्वत्र प्राधान है । कहीं-कहीं यथार्थ के आग्रह के कारण उनके चित्रण में नग्नता भी आई है । इलाचंन्द्र जोशी, अज्ञेयजी की अपेक्षा अधिक मनोवैज्ञानिक है ।

1.8.1. यथार्थवादी उपन्यास

निम्नवर्ग के चित्रण पर भी यथार्थवाद की दृष्टि पढ़ने लगी । उपेन्द्रनाथ अश्क के उपन्यास इस कोटी के अंतर्गत आते हैं .। उनमें घुटन, कुंठा एवं वर्णनाओं का वातावरण है । यशपाल, नागार्जुन और राँगेय राघव, सामाजिक यथार्थवादी उपन्यासकार हैं ।

1.8.2. आँचलिक उपन्यास

राँगेय राघव ने आँचलिक उपन्यास लिखे है । **'कब तक पुकारूँ'**, **'धरती मेरा घर'** उनके इस कोटी के उपन्यास है । फणीश्वरनाथ रेणु ने **'मैला आँचल' परती-परिकथा** आदि आँचलिक उपन्यासों का सृजन किया है ।

अमृतलाल नागर ने **'बूंद और समुद्र'**, उदयशंकर भट्ट ने **सागर, लहरें** और **मनुष्य**, लक्ष्मीनारायणलाल ने **'क्या का घोंसला'** आदि आँचलिक उपन्यासों का प्रणयन किया । रामदरशमिश्र के **'जल टूटता हुआ'**, **'पानी के प्राचीर'** और **'सूखता हुआ तालाब'** भी महत्वपूर्ण आँचलिक उपन्यास है ।

1.9. प्रगतिवादी विचारधारा

आधुनिक काल पर प्रगतिवादी की गहरी छाया है । इस युग के प्रमुख उपन्यासकार या नेता **यशपालजी** है । ये मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवादी लेखक है - **दादा कामरेड, देशद्रोही, मनुष्य के रूप, दिव्या** आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं । अन्य प्रगतिवादी

उपन्यासकार इस प्रकार हैं - **राँगेय राघव, भगवतशरण उपाध्याय नागार्जुन** आदि हैं ।

राँगेय राघव ने अनेक ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यास लिखकर इस क्षेत्र में खूब काम दिया है । इनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक समाजवादी है । नागार्जुन ने **'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'रतिनाथ की चाची'** आदि भी मार्क्सीय-विचारधारा के उपन्यास है ।

अपने उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष सामाजिक विषमता दरिद्रता आदि का अत्यंत मनोवैज्ञानिक और साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित चित्रण किया है । जीवन के यथार्थ के अधिक्य से अधिकांश उपन्यासों में क्रांति की एक विध्वंसक ज्वाला के दर्शन होते है । उपयुक्त उपन्यासों से अतिरिक्त आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने **बाणभट्ट की आत्म-कथा** नामक एक अनोखा उपन्यास लिखा है । उनका अन्य उपन्यास - **'चारु चन्द्रलेखा', पुनर्नवा** हैं ।

हिन्दी की महिला लेखिकाओं में श्रीमती **उषादेवी मित्री, कुमारी कंचनलता सब्बरवाल, शिवानी, उषा प्रियंवदा, मन्नूभंडारी, कृष्णसोबती** आदि के उपन्यासों में भारतीय नारी का सुन्दर चित्रण मिलता है । श्रीमती मन्नूभंडारी ने **'आपका बंटी'** में तलाक शुदा पति-पत्नी के प्रश्न को बच्चों की समस्या के बिन्दु से उठाया है, वह एक नया प्रश्न हैं । लेखिका ने बच्चे, पत्नी और पति तीनों की मानसिकता चित्रित करते हुए बच्चे के जीवन की अनिश्चितता और उसकी ट्रेजडी का अहसास उभारा है । किंतु यह अनुभव का ही प्रभाव है । पत्नी के दर्द को अधिक संक्रांत और प्रमाणिक रूप से लेखिका ने उभार सकी है । उषा और मन्नूजी भावुक लेखिकाएं है कृष्णा सोबती ने निरंतर नारी की बेबसी के बीच से ही उसकी अर्जा और यौन साहसिकता का भी स्पर्श करती गई है ।

प्रेमचंद युगीन उपन्यास समाज का सच्चा प्रतिबिंब है । समाज के विभिन्न वर्ग उनकी मनस्थिति, स्वार्थी के संघर्ष सामाजिक

रूढ़ियाँ एवं विषमताएँ, शासन यंत्र की कठोरता, आर्थिक विषमता एवं तज्जन्य असंतोष आदि का विस्तार के साथ उनके उपन्यासों में अंकन हुआ ।

जीवन दृष्टि आदर्शोन्मुख और यथार्थवाद प्रेमचंद पर आदर्शवादी संस्कार बड़े ही प्रगाढ़ भाव से पड़े थे और वे साहित्य को मानव-मंगल का साधन समझते थे । उनमें कलाकार का विवेक था, मौलिक साहित्य-प्रेरणा थी अतएव उन्होंने युगीन सामाजिक जीवन का अत्यधिक सच्चाई से यथार्थ चित्रण करते हुए आदर्श मार्ग की ओर संकेत किया ।

प्रेमचंदोत्तर युग में सिर्फ भारत के ही नहीं संपूर्ण विश्व की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है । अधिनायकवादी देशों का युद्धेन्नाद और अन्ततः पराज्य, परमाणु एवं **आद्जन** बमों का आविष्कार तथा उनके प्रयोग की विभीषिका, संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना, पराधीन देशों की जागरूकता एवं स्वतंत्रता, चीन में साम्यवादियों की विजय, अरब राष्ट्रीयता का उदय, शक्तिगुटों का शांति-युद्ध, शांति के लिए किए गए प्रयत्न, अंतरिक्षगामि यंत्रों के आविष्कार एवं प्रयोग आदि ने विश्व की जीवन रीति विचार-धारा एवं मानव-मूल्यों में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिये । इन सब का प्रभाव विश्व साहित्य पर पड़ा । भारत में भी युद्ध के लिए सैनिकों की भरती सन् 1942 का **'भारत छोड़ों'** आंदोलन तथा शासकों द्वारा उसका दमन, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की **'आजाद हिन्द'** सेना एवं बर्मा में उसकी सामरिक उपलब्धियां, अभूतपूर्व महँगाई, बंगाल का अकाल, मूल्य नियंत्रण एवं राशनिंग हिन्दू-मुस्लिम दंगे, सन् 1947 में देश का बंटवारा एवं स्वतंत्रता-प्राप्ति, पंजाब का अमानवीय हत्याकांड, काश्मीर समस्या नवीन संविधान एवं म्वतंत्र गणतंत्र की स्थापना, सार्वजनिक चुनाव, ग्राम सुधार के प्रयत्न, जमींदारी-उन्मूलन, पंचवार्षीय विकास योजना आदि के राजनीतिक, आर्थिक सामाजिक ढाँचे को बहुत कुछ बदल दिया और अनेक समस्याएँ उठ खड़ी हुई हैं । यह सभी परिवर्तन और परिस्थितियों

का हिन्दी उपन्यास पर प्रभाव पड़ा है । हिन्दी उपन्यास समय के साथ चलने का आकांक्षी रहा है ।

1.9.1. उपन्यास के महत्व और तत्व

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने उपन्यास की परिभाषा देते हुए लिखा है - **''उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है, लेकिन यह कायदा है कि जो चीज़ जितनी ही सरल होती है, उसकी परिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है, कविता की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी । जितने विद्वान हैं, उतनी ही परिभाषाएँ हैं । कहीं दो विद्वानों की राये नहीं मिलती । उपन्यास के विषय में भी यही बात कही जा सकती है । इसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है, जिस पर सभी लोग सहमत हो ..... मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ । मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उनके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है ।''**

डॉ.श्यामसुन्दर दास जी का कथन है - **''उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है ।''**

डॉ.गुलाबराय के अनुसार **''उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला में बंधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है, जिसमें अपेक्षा-कृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है ।''**

हिन्दी के श्रेष्ठ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उपन्यास पर विचार करते हुए कहा है - **''समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही है, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न कर सकते हैं । लोक किसी जन-समाज के बीच काल की गति के अनुसार जो गूढ़ और चिन्त्य परिस्थितियाँ खड़ी**

होती रहती हैं उनके गोचर रूप में सामने लाना और कभी-कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यासों का काम हैं !''

अंग्रेजी विद्वान हेनरी जेम्स और डॉ.मुलर उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार करते है ।

"A novel in its broadest definition, a personal, a direct impression of life."

- Henery James "The Art of Fiction"

"The novel is typically a representation of human experience whether liberal or ideal and therefore inevitably a comment upon life."

- Herbert F.Muller, Ph.D.

डॉ.सत्येन्द्र कहते हैं - ''उपन्यास नये युग की नई अभिव्यक्ति का नया रूप है । साहित्य के रूपों के उद्‌भव के संबंध में यह एक अखण्ड सत्य है कि वे व्यक्ति और युग के शाश्वत और सामयिक रसायन का परिणाम होते हैं ।''

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि उपन्यास मानव-जीवन का, उसके समग्र रूप में चित्रण प्रस्तुत करनेवाला, आधुनिक युग में सबसे सशक्त साहित्य-माध्यम है । आधुनिक युग में उपन्यास की लोक-प्रियता और सर्वाधिक महत्व का मुख्य कारण यह है कि मनुष्य के जीवन की झाँकी और उसके चरित्र की विविध परिस्थितियों में प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाओं का जितना सफल उद्‌घाटन इस उपन्यास साहित्यिक माध्यम द्वारा किया जा सकता है उतना अन्य साहित्यांगों द्वारा नहीं ।

1.9.2. 'उपन्यास' शब्द की व्युत्पत्ति

'उपन्यास' शब्द में 'अस्' धातु है । 'नि' उसर्ग से मिलकर 'न्यास' शब्द बनता है । (न्यास = नि + अस्) 'न्यास' का अर्थ धरोहर । इस प्रकार से 'उपन्यास' का अर्थ हुआ ''समीप रखी हुई

वस्तु'' अर्थात् ऐसी कृति जो हमें अपने जीवन के निकट की प्रतीत हो । प्राचीन संस्कृत साहित्य में लिखा भी गया है कि 'उपन्यासः प्रसादनम्' अर्थात् प्रसन्न करने को उपन्यास कहा जाता है ।

बंगाल में ''उपन्यास'', गुजराती में 'नकल कथा', मराठी में ''कादम्बरी'' और उर्दू में ''नाबेल'' शब्द का प्रयोग होता है उसी अर्थ में हिन्दी में उपन्यास शब्द का प्रयोग होता है ।

उपन्यास जीवन की उपासना है । इसमें हम जीवन के साथ तादान्मय स्थापित करते हैं । जीवन का संपूर्ण रूप अपनी वासना की बास के बिना इसमें पूजा-स्थान की सी पवित्रता रखता है । जीवन में जीव और परमेश्वर दों ही तो होते हैं, पर उपन्यास में जीवन, जीव और जीवनेश्वर परमात्मा तीनों ही देश, काल की माप में रहते हैं ।

1.10. उपन्यास के तत्व

सामान्य रूप से उपन्यास के छः तत्व माने जाते हैं ।

1. कथानक या कथावस्तु
2. पात्र अथवा चरित्र-चित्रण
3. कथोपकथन अथवा संवाद
4. भाषा और शैली
5. देशकाल अथवा वातावरण
6. उद्देश्य

1.10.1. कथानक

कथानक ही उपन्यास का मूल तत्व है जिसका महत्व उसके अन्य तत्वों से अधिक है । कथानक ही वह वस्तु है जिस पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है । कथानक को उपन्यास का ढाँचा माना जाता है । उपन्यास की रचना कथानक के योग से होती है । कथानक का स्थान उपन्यास में वही है जो कि शरीर में हड्डियों का ।

कथानक अपनी सीमा में जीवन की समग्रता का अंकन करता है । तथा एक विस्तृत पृष्ठभूमि के छोरों को बाँधने का प्रयत्न करता है । उपन्यासकार के लिए यही शर्त होती है कि उसके पाँव धरती पर टिके होने चाहिए । ऐसे कथानक सफल एवं महत्वपूर्ण समझे जाते हैं जिनमें प्रगतिशील तत्वों की प्रधानता रहती है तथा सामाजिक जीवन का पूर्ण यथार्थवादी पृष्ठभूमि पर अंकित किया जाता है ।

उपन्यासकार का काम केवल कथानक के चुनाव के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता । उसका कार्य इससे आगे यह भी रहता है कि वह उसमें सम्बद्धता तथा घटना-क्रम के निर्धारण में विवेच से काम लें ।

मौलिकता का गुण उपन्यासकार की प्रतिभा का परिचारक होता है । किसी उपन्यास के कथानक में जितनी मौलिकता होती है, उतना ही उसका महत्व बढ़ जाता है । मौलिकता को कथानक का मुख्य गुण माना जाता है ।

कथानक की स्वाभाविक गति का विकास तभी होता है, जब कि कलात्मक ढंग से घटनाओं का संयोजन करें ।

रोचकता के अभाव से उपन्यास पाठकों का मनोरंजन नहीं कर सकता ।

कथानक का महत्व यह है कि मानव-जीवन के विविध पक्षों से संबंध रखनेवाली समस्याओं को कथानक के द्वारा ही समुचित रूप में उपस्थित किया जा सकता है ।

कथानक के द्वारा ही पाठक को इस बात का आभास मिलता है कि वह किस युग अथवा समाज के किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है ।

कथानक का सीधा संबंध पात्रों के चरित्र-चित्रण से होता है । कथानक उपन्यास की किसी भी अवस्था का चित्रण करते

समय उनके प्रत्येक पहलू का ध्यान में रखता है और उसकी प्रत्येक सम्भावना पर प्रकाश डालता है ।

कथानक की सफलता इस बात पर निर्भर होता है कि जो अनुभूतियाँ मुख्यतः उससे संबद्ध है उनकी अभिव्यक्ति में पूर्णता हुई है या नहीं, क्योंकि अभिव्यक्ति की पूर्णता उसकी उपेक्षा-भावना के प्रतिकार के रूप में कथा को प्रभावपूर्ण बनाने में सहायक होती है ।

कथानक को पाश्चात्य आलोचक ई.एम. फ़र्स्टर ने इतना अधिक महत्व दिया है कि वह उसे ही उपन्यास मान लेता है ।

कथानक में कई प्रकार की शैलियाँ हैं । उनमें प्रमुख शैलियाँ इस प्रकार हैं -

1.10.1.1. वर्णनात्मक शैली

कथानक में वर्णनात्मक शैली ही सर्वाधिक प्रचलित है । इस प्रकार के उपन्यासों में उपन्यासकार किसी भी पात्र से संबंधित किसी भी घटना का वर्णन किसी भी रूप में कर सकता है जो अन्य शैलियों के माध्यम से संभव नहीं है ।

1.10.1.2. आत्मकथात्मक शैली

इस प्रकार के उपन्यसों में उपन्यासकार स्वयं कथा का नायक, नायिका या अन्य किसी भी एक पात्र का स्थान ग्रहण करता है, और इस प्रकार प्रत्येक घटना को वर्णन करता चलता है । इस प्रकार के उपन्यासों में उपन्यासकार को सीमाओं में बंधकर रहना पड़ता है, क्योंकि वह केवल उन्हीं पात्रों के रूप और बातों की जानकारी के प्रकट कर सकता है, जिन्हें उसने अपने चरित्र के अनुसार स्वयं देखा या अनुभव किया है ।

1.10.1.3. पात्रात्मक शैली

तीसरी शैली पात्रात्मक शैली है । संपूर्ण कथा पात्रों के रूप

में कही जाती है और यह शैली भी पूर्ण रूप से सुविधा जनक नहीं है । क्योंकि इसमें भी सीमाएँ है ।

1.10.1.4. डायरी शैली

इसमें सारी कथा को डायरी के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है । इस प्रकार के उपन्यास केवल एक ही पात्र के लिये हो सकता है ।

सबसे अधिक सुविधाजनक शैली वर्णनात्मक शैली ही है ।

कथानक के आधार पर उपन्यासों के दो भेद किये जाते हैं ।

1. शिथिल-वस्तु उपन्यास
2. संगठित-वस्तु उपन्यास

1.10.1.5. शिथिल-वस्तु उपन्यास

इस कोटी के अंतर्गत जो उपन्यास आते हैं (बहुत सी घटनाओं का घटाटोप मात्र होता है, उनमें आपस में कोई सहज अथवा तर्कसंगत संबंध प्रायः नहीं होता ।) उनके कथानक में संबद्धता का अभाव होता है और वे सूत्रों में बिखरे हुये होते हैं और उनमें नाटकीय संयोजना का अभाव होता है ।

1.10.1.6. संगठित-वस्तु उपन्यास

इस प्रकार के उपन्यासों में रचना का आधार उनकी व्यापक योजना होती है जिस पर उनका सारा ढाँचा निर्मित किया जाता है । सभी घटनाएँ परस्पर संबंधित होती है तथा उनकी क्रमबद्धता कहीं भंग नहीं होने पाती ।

1.11. चरित्र-चित्रण

उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व चरित्र-चित्रण है । कुछ

आलोचक चारित्र-चित्रण को अधिक महत्व देते हैं । उपन्यासकार का सबसे महत्वपूर्ण करणीय चरित्र निर्माण ही है ।

उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने कहा है कि **''मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र समझता हूँ ।''** उनके इस छोटे से वाक्य में ही उपन्यास-कला का सारा रहस्य निहित है ।

यदि उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र है तो इसका बड़ा गुण है, पात्रों की सजीवता । उपन्यास का विषय मनुष्य और जीवन । उपन्यासकार अपनी कृति में सशक्त और प्रभावशाली पात्रों में सजीवता सृष्टि करें तो पाठक के हृदय पर भारी प्रभाव डालते हैं । उपन्यास में दो प्रकार के पात्र होते हैं । प्रधान पात्र तथा गौण पात्र प्रधान पात्रों के अंतर्गत नायक, नायिका, सहनाश्क को रखा जा सकता है । गौण पात्र कथानक को गति प्रदान करने और प्रमुख पात्रों का चरित्र स्पष्ट करने के लिए ही परिकल्पित किये जाते हैं । मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है । चरित्र-चित्रण में पात्रों के गुणावगुणों का मूल्यांकन भी किया जाता है ।

यदि उपन्यासकार पात्रों की सृष्टि-कल्पना के आधार पर करेगा तो वे सर्वथा निर्जीव होंगे और पाठक पर किसी भी प्रकार का प्रभाव नहीं होंगी ।

यदि पात्र यथार्थ-जीवन से लिए गए होंगे तो उनमें सजीवता होगी और वे अपने वर्ग या समाज का प्रतिनिधित्व करने में भी समर्थ होंगे ।

चरित्रों की सफलता तब ही होती है कि जब उनका अपना व्यक्तित्व अथवा आदर्श यथार्थ जीवन से लिया गया है ।

पात्रों की योजना इस प्रकार होनी चाहिए कि उनका अपना विशिष्ट स्थान बना रही और उनसे उद्देश्य की पूर्ति हो । पात्रों के संबंध में अवश्य और अनावश्यक का प्रश्न भी उठता है । जो पात्र हो वे किसी न किसी उद्देश्य को लेकर ही रखे गए हों । पात्रों का

चरित्र उनके संस्कारों, उनकी परिस्थितियों तथा प्रवृत्तियों के अनुसार मनोवैज्ञानिक होना चाहिए ।

1.11.1. चरित्र-चित्रण की विधि

1. **विश्लेषणात्मक विधि :**

अगर उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र-चित्रण में स्वयं अपनी ओर से लिखता है, तो इसे विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण कहते हैं । उपन्यासकार पात्रों के चरित्र, आचार, व्यवहार आदि का स्वयं वर्णन करता है, जिसके कारण पाठक को उनके विषय में जानकारी प्राप्त होती है ।

2. **अभिनयात्मक विधि :**

इसमें उपन्यासकार स्वयं किसी पात्र के विषय में कुछ नहीं कहता । अन्य पात्रों द्वारा ही पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालता है । यह विधि पहले की अपेक्षा अधिक कलात्मक है ।

1.11.2. चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ और गुण

1.11.2.1. अनुकूलता

यह चरित्र-चित्रण का प्रथम आवश्यक गुण है । इसके अनुसार पात्र को कथानक के अनुकूल होना चाहिए ।

1.11.2.2. स्वाभाविकता

यह चरित्र-चित्रण का विशिष्ट गुण है । पाठकों पर इस प्रकार का प्रभाव डाल सकता है कि उन्हें अपने विचार-प्रवाह के साथ बहा ले जा सकता है ।

1.11.2.3. सप्राणता

यह चरित्र-चित्रण का संयुक्त गुण है । जो अन्य से संबद्ध

रहता है । जब पात्र में अनुकूलता और स्वाभाविकता का अभाव नहीं होता तब उसमें सप्राणता की आशा भी की जा सकती है ।

1.11.2.4. सहृदयता

उपन्यास के पात्रों में अधिक से अधिक मानवीय होना चाहिए । उन्हें एक-दूसरे के सुख-दुःख से प्रभावित रहना चाहिए और अपने सुख-दुःख में दूसरों की सहानुभूति रखनी चाहिए ।

1.11.2.5. मौलिकता

उपन्यास के पात्रों में मौलिकता के अभाव से अनेक विशेषताओं से युक्त हो सकते है । प्रत्येक मात्र के व्यवहार, विचार और आदर्श में मौलिक का होना अनिवार्य है ।

उपर्युक्त गुणों के साथ-साथ पात्रों के चरित्र-चित्रण में कलात्मकता, द्वन्द्वात्मकता तथा बौद्धिकता आदि विशेषताओं का भी होना चाहिए ।

उपन्यास में कथानक के अनुकूल पात्र नहीं होते तो दोनों में संघर्ष होता है । दोनों को संतुलित रूप में विकसित करने से दोनों के बीच अनुकूलता भी स्थिर रहे ।

कथानक और पात्रों के बीच में संतुलन के लिए विकासगत संतुलन, अंतर्विरोध की उपेक्षा पर बल दिया जा सकता है ।

उपन्यास के पात्रों की सृष्टि कथानक की सीमाओं के अनुरूप ही होनी चाहिए, क्योंकि उपन्यास की सफलता काफी सीमा तक निर्भर करती है ।

कथानक और पात्रों के बीच अंतर्विरोध की स्थिति तब उत्पन्न होती हैं, जब कथानक की कुछ घटनाएँ किन्हीं विशेष स्थलों पर पात्रों के अपने चारित्रिक गुणों की दृष्टि से समान नहीं होती । कथानक और पात्रों के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण करते

हुए उनके दो भेद किये जाते हैं । घटना-प्रधान उपन्यास और चरित्र-प्रधान उपन्यास ।

घटना-प्रधान उपन्यास चरित्रों के आधार पर जिन उपन्यासों का वर्गीकरण किया जाता है उन्हें चरित्र-प्रधान कहा जाता है ।

1.12. कथोपकथन

यह उपन्यास का तीसरा तत्व है । यह कथा का विकास और पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहाय करता है । पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप को कथोपकथन, कहते हैं । अंग्रेजी में इसका डायलाग (Dialogue) कहते हैं ।

कथोपकथन के द्वारा ही उपन्यास से आकर्षण और मनोरंजन की वृद्धि होती है । उपन्यास में कथोपकथन अपनी विविधता के साथ प्रयुक्त होता है । कथोपकथन के द्वारा उपन्यासकार अपने उपन्यास में वर्णित घटनाओं या दृश्यों में सजीवता लाता है और उसके संगठन से कथानक का विस्तार करता है । उपन्यासकार कथोपकथन के द्वारा ही पात्रों के विषय, समस्याएँ, विविध जटिल परिस्थितियों को प्रत्यक्ष बोध कराता है, जो अन्य किसी माध्यम से संभव नहीं है ।

कथोपकथन के माध्यम से कुशल उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्रों पर प्रकाश डालता है । कथोपकथन बहुत महत्वपूर्ण है । उपन्यास की सफलता के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि पात्रों की बातचीत (कथोपकथन) स्वाभाविक और प्रसंगानुकूल हो । कथोपकथन नीरस हो जाय तो सफलता नहीं प्राप्त होती है । कथोपकथन का उतना ही प्रयोग होना चाहिए । जितने से कथा की प्रगति में अथवा चरित्रों के विकास में सहायता मिले । आदर्श कथोपकथन पात्रों के भावों, प्रवृत्तियों, मनोवेगों तथा घटनाओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया दिखाने के साथ साथ कार्यप्रवाह को भी आगे बढ़ाता जाता है ।

प्रेमचंद का विचार है कि ''उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही अच्छा है । इस संबंध में इतना ध्यान रखना आवश्यक है कि वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए । किसी भी चरित्र के मुँह से निकले हुए प्रत्येक वाक्य द्वारा उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिए । बातचीत को स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुकूल और सूक्ष्म होना आवश्यक है ।

कथोपकथन में परिस्थिति की अनुरूपता का भी ध्यान रखना आवश्यक होता है । उसे सरल, सुस्पष्ट रोचक और उसी समय का कहा हुआ सा लगना चाहिए ।

आदर्श कथोपकथन की परिभाषा देते हुए आर्लोबेटस ने लिखा है - **''ऐसी रचना जो मनुष्यों की साधरण बातचीत का सा प्रभाव उत्पन्न करे अथवा यथासंभव उस संभाषण-सा लगे जो कहीं ओट में होकर सुना गया हो ।''**

उपन्यास में भी जीवन के सहज-सौन्दर्य वर्णन का एकमात्र माध्यम है पात्रों का संभाषण उनका कथोपकथन । जब स्वाभाविक, यथार्थ कथोपकथन पाठक के सामने आते हैं तो वह लेखक को, अपने को, सबको भूल जाता है और उसकी आँखों के सामने केवल पात्र और उनकी परिस्थिति नाचते हैं ।

कथोपकथन में निम्नलिखित गुण बताये जाते हैं -

1.12.1. उपयुक्तता

उपन्यासकार कथोपकथन को चमत्कार-सृष्टि का महत्वपूर्ण माध्यम मानकर उसका उपयोग करता है । कथोपकथन का उपन्यास की घटना, अवसर तथा वातावरण के उपयुक्त होना बहुत आवश्यक है ।

1.12.2. अनुकूलता

कथोपकथन में यह आवश्यक है कि वह विविध पात्रों के स्वभाव के अनुकूल हो, अन्यथा उनके चरित्र-विकास की दृष्टि से उसका महत्व नहीं होगा ।

1.12.3. सम्बद्धता

उपन्यासकार जिन बातों को कह रहा हो, या कहना चाहता हो उनमें कथानक तथा पात्रों से किसी न किसी प्रकार का प्रत्यक्ष पारस्परिक संबंध अवश्यक होना चाहिए ।

1.12.4. स्वाभाविकता

कथोपकथन का समावेश उपन्यास में स्वाभाविक रूप से और आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए ।

1.12.5. संक्षिप्तता

लम्बे कथोपकथन अस्वाभाविक और अब पैदा करनेवाले होते हैं । छोटे कथोपकथन सफल सिद्ध होते हैं । उपन्यास के प्रत्येक कथोपकथन सोद्देश्य होना चाहिए ।

1.13. देशकाल अथवा वातावरण

उपन्यास की स्वाभाविकता की दिशा में देशकाल अथवा वातावरण की रक्षा का मुख्य स्थान होता है ।

यदि कोई उपन्यासकार देश-काल का बंधन नहीं मानेगा, तो उसकी कृति में किसी भी युग की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण मिलना संभव नहीं होगा ।

देश-काल के अंतर्गत किसी भी देश या समाज की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियाँ, आचार-विचार,

रहन-सहन, रीति-रिवाज तथा समाज की कुरीतियाँ या विशेषताएँ आदि समझी जाती हैं ।

प्रत्येक साहित्यकार अपने युग का सच्चा प्रतिनिधि है । वातावरण पात्रों का संसार है ।

देश-काल में तीन भेद किये जाते हैं - सामाजिक, प्राकृतिक, ऐतिहासिक । सामाजिक दशा का यथार्थ चित्रण किया जाता है ।

1.14. शैली

शैली का द्वारा उपन्यासकार अपनी कृति को अधिक आकर्षक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है । जिस प्रकार उपन्यासकार अपने विचार और भावनाओं को अभिव्यक्ति देता है, उसी को शैली कहते हैं । यदि विचार आत्मा हो तो शैली उसका शरीर ।

सरलता, स्पष्टता, रोचकता और प्रवाहपूर्णता आदि अच्छी शैली की विशेषताएँ हैं । उपन्यासों में नीचे लिखी शैलियाँ प्रचलित है ।

1. कथा-शैली
2. आत्मकथा-शैली
3. पात्र-शैली
4. डायरी-शैली

पात्र और डायरी शैली में हिन्दी में बहुत कम उपन्यास लिखे गये हैं ।

1.15. उद्देश्य

उपन्यास को लिखने के पीछे लेखक का कोई न कोई स्पष्ट उद्देश्य अवश्य रहता है । उपन्यासकार एक प्रकार, समाज रूपी रथ के लिए सारथी होता है । अतः वह अपने उपन्यास में

सम-सामयिक जीवन-मूल्यों की नियोजन करता है । लोग उपन्यास को मनोरंजन के लिए नहीं पढ़ते । उपन्यास जीवन की व्याख्या या आलोचना से है । उपन्यास का उद्देश्य महान् तथा प्रभावशाली हो और ऐसा हो कि जो सहज ही पाठकों को प्रभावित कर सके ।

1.16. शीर्षक

'शीर्षक' एक प्रकार प्रवेश-द्वारा है । शीर्षक पाठकों को आकर्षित करता है ।

उपन्यासों का शीर्षक का नामकरण नायक या नायिका के आधार पर अथवा स्थान-विशेष के आधार पर और घटना के आधार या उद्देश्य के आधार पर हो सकता है ।

उपन्यास के नाम के अंतर्गत समूची सामग्री का आ जाना आवश्यक है ।

1.17. प्रेमचन्द्र युगीन तथा अन्य उपन्यासकार

प्रेमचन्द्र युगीन तथा अन्य उपन्यासकारों में चेतना तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से सामान्यतः तीन वर्ग दृष्टिगोचर होते है :

1. कुछ उपन्यासकारों ने मानव-जीवन की समस्याओं को समाज की भूमिका में रखकर परखा और व्यापक सामाजिक और उभरती राजनीतिक चेतना के प्रसंग में मनुष्य की चारित्रिक विषमताओं तथा सामाजिक वैषम्यों और मनुष्यों के राज्य तथा समाज के सम्पर्क को क्रिया-प्रतिक्रिया के सजग चित्रण के द्वारा जन-जीवन के यथार्थ रूप का व्यापक और मानवीय स्वरूप दिग्दर्शित किया ।

2. कुछ उपन्यासकारों ने फ्रायड के मनोविश्लेषण के आधार पर मानसिक रूप से रुग्ण चरित्रों का चित्रण भर प्रस्तुत किया है ।

3. तीसरे प्रकार के उपन्यासकारों ने मनुष्य के सामाजिक

जीवन की विषमताओं को साम्राज्य-विरोधी राजनीतिक संघर्श के प्रसंग में चित्रित किया है ।

जहाँ प्रेमचंद ने व्यापक मानव-जीवन के चित्रण को अपना लक्ष्य बनाया, वहाँ जैनेन्द्र ने व्यक्ति के पारिवारिक संकुचित जीवन में उठने वाली समस्यओं को चित्रित किया । जैनेन्द्र के उपन्यासों में व्यक्ति का चित्रण है, जबकि प्रेमचंद के उपन्यासों में सम्पूर्ण समाज का है । जैनेन्द्र के उपन्यास बंगाली भाषा के प्रसिद्ध लेखक शरत् की परंपरा के उपन्यास हैं । इनके उपन्यासों में कथा और घटनाओं का आधिक्य नहीं होता । कथा अपने में सरल और संक्षिप्त होती है, किंतु पात्रों के चरित्रों के कारण कथा में एक मार्मिक रहस्यात्मकता तथा समस्या की उलझन आ जाती है, उसमें मनोगत भावों और अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण अधिक होता है, जिससे मानव के चरित्र, उसके जीवन की परिस्थितियों और उसकी समस्याओं को समझने की दृष्टि मिलती है ।

'उग्र' ने समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, गन्दगी और कुण्ठा के नग्न चित्रण के अपने उपन्यासों का आधार बनाया । 'उग्र' के उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियों का यद्यपि बड़ा ही मार्मिक चित्रण है, किन्तु उनमें मर्यादा का अभाव है, इसलिए उनका प्रभाव विपरीत होता है । इलाचन्द जोशी, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा आदि ने फ्रायडवादी मनोविज्ञान के सिद्धांतों के आधार पर मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास की रचना की ।

1.18. बोध प्रश्न

1. उपन्यास का उद्‌भव और विकास पर एक लेख लिखिए ।
2. उपन्यास के भेदों का सविस्तार वर्णन कीजिए ।
3. गद्य-साहित्य में 'प्रेमचंद' का स्थान निर्धारित कीजिए ।

NOTES

इकाई दो : प्रेमचंद की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व

इकाई की रूपरेखा

2.0. उद्देश्य

2.1. प्रस्तावना

2.2. व्यक्तित्व

2.3. जीवनी

2.4. वैवाहिक जीवन

2.5. कृतित्व

2.6. प्रेमचंद की साहित्य विशेषताएँ

- 2.6.1. सेवासदन
- 2.6.2. प्रेमाश्रम
- 2.6.3. रंगभूमि
- 2.6.4. गबन
- 2.6.5. कर्मभूमि
- 2.6.6. गोदान

2.7. प्रेमचंद की उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक जीवन

2.8. बोध प्रश्न

2.9. संदर्भ-ग्रन्थ

2.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में आपने उपन्यास का उद्‌भव और विकास के बारे में अध्ययन किया और जानकारी भी प्राप्त कर लीं ।

2.1. प्रस्तावना

अब इस इकाई में आप प्रेमचंद की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं ।

2.2. व्यक्तित्व

हिन्दी-साहित्य में प्रेमचंद का वही महत्व है, जो गोस्वामी तुलसीदास और कवि निराला का है । प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उस सामंती संस्कृति का विरोध किया है, जो सामान्य जनता के सुख और श्रम का शोषण कर रही थी । उन्होंने न तो भारत के रूढ़िवाद को ही स्वीकारा है और न पश्चिम के व्यक्तिवाद को ही मान्यता दी है । उन्होंने बाह्य जगत् और मानव-जीवन की वास्तविकता के आधार पर नई औपन्यासिक विधा की स्थापना की और उनके माध्यम से सामंती साहित्य का विरोध कर देश-भक्ति और जनतंत्र की नई साहित्य-परंपरा का समर्थन किया । वस्तुतः प्रेमचंद ने लेखक के नाते तो महानता अर्जित की ही है, मनुष्य के नाते भी उनकी महानता और महिमा दिखायी पड़ती है । सच तो यह है कि अपनी कला में वे अपने व्यक्तित्व और मनुष्यत्व की इस महार्घता का ही उद्योतन कर सके हैं । इसीलिए उनकी कला में उनका व्यक्तित्व अत्यंत तादात्म्य भाव से अनुस्यूत दिखायी पड़ता है । निश्चय ही, उनकी जीवन-कहानी उनकी कृतियों के मर्म को समझने में सहायक सिद्ध होगी ।

प्रेमचंद अत्यंत सरल और सीधी-सादी प्रकृति के आदमी थे । वैसे उनका बाह्य व्यक्तित्व इतना आकर्षक नहीं था, पर उनका आंतरिक व्यक्तित्व इतना आकर्षक और प्रभावशाली था कि जो भी

उनके सम्पर्क में आता था, वह उनके शील और सौजन्य से प्रभावित हुए बिना रह नहीं सकता था । अधिकांशतः वे खुले गले का खादी का कुरता और ढीली-ढाली धोती पहनते थे । बचपन से ही अभावों से जूझते रहने के कारण, उनके धँसे हुए पीले गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, जो उनके कष्ट और श्रम की थकान का पता देती थीं । भाग्य सर्वदा उनके प्रतिकूल ही रहा । बालकों का-सा सहज भोलापन उनके स्वभाव की ऐसी विशेषता थी कि उनसे जो कोई मिलने आता था, उसे वे अपने हृदय-विमुग्धकारी आचरण से ऐसा लुभा लेते थे कि वे उस व्यक्ति की स्मृति में सदा के लिए छा जाते थे । नैतिकता के प्रति उनके हृदय में अगाध आस्था थी । उनके सामने समाज का एक सपना था, उसे प्रतिफलित देखना ही उनका जीवनादर्श था । उनका यह स्वप्न उनके समस्त साहित्य में सामाजिक न्याय और समता की प्रतिष्ठा को कर्मणा चरितार्थ करता दीख पड़ता है । अपनी विनोदी प्रकृति के कारण ही वे अभाव की यातनाओं से कभी घबड़ाए नहीं । दुःख उनके जीवन का एक अनिवार्य सत्य था । इसीलिए वे गरीबों के प्रति अत्यंत सदय और सहानुभूतिशील रहा करते थे । इसीलिए दुखी और विवश मनुष्य की जीवन-गाथा प्रस्तुत करना, उनके साहित्यकार का एकमात्र इष्ट बना गया । इस दृष्टि से उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उनकी गरीबी ही है । उनके चरित्र की दूसरी और तुरंत सामने आ जाने वाली विशेषता उनका प्रतिशोधकांक्षी स्वभाव थी, जो उनके उपन्यासों में शोषित और पददलित मानवता की मूक तथा जागरूक आवाज़ बन कर प्रतिध्वनित हुई है । वस्तुतः उनकी कोमल करुण मुद्रा में, उनकी धँसी हुई स्वप्नदर्शी आँखों में, उनके जीवन की करुणा का इतिहास आलोकित होता रहता था ।

2.3. जीवनी

प्रतिभा का यह वरद्पुत्र 32 जुलाई सन् 1880 ई. में काशी के निकट **'लमही'** नामक गाँव में पैदा हुआ था । पिता प्रदत्त नाम

धनपत राय श्रीवास्तव था । प्रेमचंद उनका उपनाम था । वे श्रीवास्तव कायस्थ थे । उनके पिता मुन्शी थे । मुगल अदालत से संबंधित होने के कारण उनके पूर्वज इस्लामी संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित थे । प्रेमचंद भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके । निश्चय ही, इस इस्लामी प्रभावधर्मिता ने प्रेमचंद को हिन्दू-मुस्लिम-एकता के संबंध में अपनी धारणा निर्धारित करने में सहायता दी होगी । अपने पिता के निर्देशन में उन्होंने मौलवी साहब से उर्दू पढ़ना प्रारंभ किया । जीवन की नितांत शैशवावस्था में ही उनमें वयस्क विवेक की प्रौढ़ता आ गई थी । इस अवस्था में ही एक प्रकार से उन्होंने गरीबी के साथ समझौता कर लिया था । उनके पिता की मासिक आय 40/- रुपए मात्र थी । एक छोटे से पोस्ट आफिस में उनके पिता की नियुक्ति एक पोस्टमास्टर की हैसियत से हो पाई थी । इस सीमित आय की अल्पता से प्रेमचंद भली-भाँति परिचित थे । अतः गरीबी से वे बहुत बचपन में ही अभ्यस्त गए थे । उनकी पत्नी श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद ने, अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद : घर में' में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है, जिससे उनके परिवार के भयंकर दारिद्रय का पता मिलता है ।

कहा जाता है कि बचपन में उन्हें पतंग उड़ाने का बड़ा शौक था, पर पास में पैसा नहीं रहने के कारण उन्हें पतंगों की लूट पर ही निर्भर रहना पड़ता था । 'बड़े भाई साहब' शीर्षक कहानी में उनका यह पतंग-प्रेम अत्यंत सामर्थ्यपूर्ण ढंग से विज्ञापित हो पाया है । मनमानी चीजों को खाने के लिए उनका जी बुरी तरह ललचता रहता था । इन्हीं दिनों उन्हें गुड़ चुरा कर खाने की बुरी लत पड़ गई । प्रेमचंद का बचपन गरीबी की व्यथा की कथा है । उन्होंने स्वयं लिखा है - ''अँधरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिन तक पहना है । जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे, तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आना से अधिक का जूता नहीं खारीदा और न चार आने गज से ज्यादा का कपड़ा कभी मेरे लिए खरीदा गया ।'' प्रेमचंद एक सम्मिलित परिवार के सदस्य थे ।

इसलिए वे सम्मिलित परिवार को भारतीय समाज-व्यवस्था का मूल आधार मानते थे । अपने उपन्यासों में उन्होंने इस सम्मिलित परिवार-व्यवस्था के सुख और दुःख को, उत्थान और पतन के विघटन को, अत्यंत जीवंत रूप में चित्रित किया है ।

अपने पिता के स्थानांतरण के कारण सन् 1813 ई. में जब उन्हें जीमनपुर आना पड़ा तो वहाँ की स्थितियों का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है - ''पिताजी ने जो मकान ले रखा था, उसका किराया डेढ़ रुपए था, गन्दा मकान था । उसी के दरवाजे पर एक कोठरी थी, वह मुझे सोने के लिए मिली । मैं विनोद के लिए एक तम्बाकू वाले के मकान में चला जाया करता था । मेरी उम्र उस समय बारह वर्ष की थी ।'' इस प्रकार अपने तम्बाकू वाले मित्र के साथ प्रेमचंद तम्बाकू के बड़े काले पिण्डों के पीछे जम कर बैठ जाते और हुक्के के कशों के साथ 'तिलस्म होशरुबा' पढ़ते रहते । यह कभी न समाप्त होने वाली लम्बी दास्तान का सिलसिला एक साल तक चलता रहा और यहीं से सम्भवतः प्रेमचंद ने अपने साहित्यिक जीवन की तैयारी की ।

उनकी जिन्दगी गरीबी की अभावजन्य वेदनाओं के बीच गुजरती चली जा रही थी । उससे वे अपने को किसी भी कीमत पर नहीं बचा सके । वे लिखते हैं - ''पैसों की दिक्कत तो मुझे हमेशा रहती थी । बारह आने महीना फीस लगती थी । उन बारह आनों में से मैं एकाध आना हर महीने खा जाता था । जिस स्कूल में था, उसमें छोटी जाति के लोग थे । वे लोग मुझसे लेकर दो-चार पैसे खा लेते थे, इसलिए फीस देने में बड़ी दिक्कत होती थी । घर में माँ तो थी नहीं, चाची से ही माँगता ।'' यह चाची उनकी सौतली माँ थीं । सात वर्ष की अवस्था में ही वे अपनी माँ के स्नेह को खो चुके थे, फिर भी उनके मस्तिष्क पर उनकी माँ गहरा संस्कार छोड़ गई थीं । माता और प्रथम प्रेम की अनुभूति इन दो तत्वों से ही कोई भी कलाकार नारी की प्रतिमा को गढ़ता है । प्रेमचंद की नारी-सृष्टियाँ उनकी माता की प्रेरणा के परिणाम हैं ।

अपनी माता के संबंध में उन्होंने लिखा है - 'वह एक महान् नारी थी । जैसा कि सभी अच्छी माताओं का स्वभाव होता है, कभी तो वह ममता की मूर्ति बन जाती थी और कभी अत्यंत कठोर ।'' निश्चय ही उनकी कृतियों में व्यंजित नारी का यह रूप, उनकी माता की प्रेरणा का परिणाम है । उनकी माता के निधन के बाद उनके पिता ने दूसरी शादी की । शादी के कुछ दिन बाद ही उनके पिता की मृत्यु हो गई । उस समय प्रेमचंद की अवस्था मुश्किल से 25 वर्ष की थी । विकट अर्थाभाव के क्षणों में उनके ऊपर सौतेली माँ और दो सौतेले भाईयों का भार आ पड़ा ।

2.4. वैवाहिक जीवन

पिता और परिवार के बड़े-बुजुर्गों की आकाँक्षा-पूर्ति के हेतु पिता के जीवन-काल में ही प्रेमचंद 'एक कुरूप और असभ्य स्त्री' के साथ जोत दिया गया था । उनकी पत्नी न तो रूपवती ही थी, न मुँह की मीठी ही । अतः उनके जीवन में उनकी पत्नी एक अतिरिक्त बोझ ही थी । उनका यह अनमेल विवाह सर्वथा असफल ही प्रमाणित हुआ । उनकी पत्नी उन्हें छोड़ कर मायके चली गई और फिर कभी लौट कर उनके पास नहीं आई । बहुत वर्षों तक प्रेमचंद को अपनी पत्नी के गुजारे के लिए खर्च भेजना पड़ता था ।

प्रेमचंद अभी युवक ही थे । अतः उनके मित्रों ने उन्हें दूसरी शादी कर लेने को विवश किया । अपने मित्रों के अनुरोध से उन्होंने किसी विधवा से अपना ब्याह करना निश्चित किया । अपने क्रांतिकारी विचार को कर्मणा चरितार्थ करने के कारण उन्हें न केवल अपने मित्रों और संबंधियों की सहानुभूति खो देनी पड़ी, बल्कि उन्हें उस दहेज को भी खो देना पड़ा कि जिससे उस समय उन्हें आर्थिक सहायता मिल सकती थी । इस प्रकार उन्होंने उस विधवा लड़की से शादी की, जो ग्यारह वर्ष की अवस्था में अपने प्रथम पति को विवाह के तीन महीने बाद ही खो चुकी थी । उनकी दूसरी पत्नी श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद ने अपने को, अपने चिंताग्रस्त

और लापरवाह पति के लिए जो पूर्णतया साहित्यिक जीवन व्यतीत करना चाहता था, अनुकूल जीवन-संगिनी के रूप में आशातीत रूप में सफल प्रमाणित किया । डॉ.इन्द्रनाथ मदान के नाम लिखे गए अपने पत्र में प्रेमचंद ने श्रीमती शिवरानी प्रेमचंद के प्रति अपना संतोष विज्ञापित करते हुए लिखा था - "मेरे वैवाहिक जीवन में रोमांस जैसी कोई चीज नहीं थी । मेरी प्रथम पत्नी सन् 1904 ई. में मरी । वह एक अभागी स्त्री थी, जो देखने में तनिक भी अच्छी नहीं थी और यद्यपि मैं उससे संतुष्ट नहीं था, तथापि मैं बिना किसी प्रकार के शिकवे-शिकायत के उसे निभाता रहा, जैसा कि सभी पुराने ढंग के पति किया करते हैं । जब वह मर गई, तब मैंने एक बाल विधवा से शादी की और मैं उसके साथ अत्यंत प्रसन्न हूँ । उसकी रुचि साहित्यिक है और वह कभी-कभी कहानियाँ भी लिखती है । वह एक निर्भीक, साहसी, दृढ़, विश्वसनीय, भूल स्वीकार करने वाली और अत्यधिक प्रोत्साहन देने वाली स्त्री है । उसने असहयोग आंदोलन में भाग लिया और वह जेल भी गई । जो कुछ वह नहीं दे सकती उसकी आशा न करता हुआ मैं उससे प्रसन्न हूँ । वह टूट भले ही जाए, पर आप उसे झुका नहीं सकते ।" इस प्रकार श्रीमती प्रेमचंद ने अपने को अपने पति के जीवनादर्शों के सर्वथा अनुकूल प्रमाणित किया ।

2.5. कृतित्व

अपनी दूसरी शादी के बहुत पूर्व ही प्रेमचंद ने साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में लिखना प्रारंभ कर दिया था । सन् 1901 में उर्दू में उनका पहला उपन्यास **'हम खुरमा, हम सबाब'** प्रकाशित हुआ । उनका **'कृष्ण'** नामक उपन्यास भी प्रकाशित हो चुका था । सन् 1905 ई. में उनका **'प्रेमा'** नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ । सन् 1907 ई. में **'ज़माना'** नामक उर्दू की मासिक पत्रिका में उनकी सबसे पहली कहानी, **'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न'** प्रकाशित हुई । यह कहानी देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत थी । लेखक ने दुनिया की सबसे मूल्यवान वस्तु के रूप में रक्त की

उस बूँद को प्रमाणित किया था, जो मातृभूमि की रक्षा के हेतु अर्पित की जाती है । इसके बाद देश-भक्ति-भावना से पूर्ण उनकी ऐसी अनेक कहानियाँ प्रकाश में आईं । **'सोज़-वतन'** के नाम से सन् 1907 ई. में उनका प्रथम कहानी-संग्रह प्रकाश में आया । **'सोज़-वतन'** की कहानियों में देश-प्रेम की भावना आलोड़ित हो रही थी । भयभीत नौकरशाही सरकार का ध्यान इस संग्रह की कहानियों की ओर गया । जिलाधीश ने उन्हें बुलाया और ऐसी कहानियाँ लिखने के लिए कैफियत माँगी, जिनसे सरकार के प्रति घृणा और विद्रोह की भावना पैदा होने की सम्भावना थी । जिलाधीश ने उन्हें चेतावनी देते हुए कहा था - **''अगर अंग्रेजी राज्य में तुम न होते, तो आज तुम्हारे दोनो हाथ कटवा लिए गए होते । तुम्हारे पास जितनी कापियाँ हों, उन्हें मेरे पास भेज दो । आइन्दा फिर कभी लिखने का नाम न लेना ।''** कहते हैं, लगभग 500 पुस्तकें जिलाधीश के आदेशानुसार जनता के सामने अग्नि को सौंप दी गईं । किंतु, प्रेमचंद का लिखना कभी बंद नहीं हुआ । 'ज़माना' के सम्पादक निगम साहब ने उन्हें **नवाब राय** के बजाय **प्रेमचंद** के रूप में प्रस्तुत किया ।

सन् 1914 ई. में उन्होंने उर्दू को छोड़कर हिन्दी में लिखना प्रारंभ किया । सन् 1914 ई. के आसपास उनकी कहानियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और वे समय-समय पर हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी होती रहीं । उसके बाद उन्होंने नियमित रूप से **'सरस्वती'** में लिखना प्रारंभ किया । इन्हीं दिनों उनकी सुविख्यात कहानी **'पंच परमेश्वर'** आलोक में आई । सन् 1916 ई. में उनका प्रसिद्ध उपन्यास **'सेवासदन'** प्रकाशित हुआ । डॉ.रामविलास शर्मा **'सेवासदन'** के संबंध में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं, **''केवल निर्माण की दृष्टि से स्वयं प्रेमचंद 'सेवासदन' को फिर न पा सके, अपने अन्य बड़े उपन्यासों में उन्होंने निर्माण का ढंग ही बदल दिया था ।''** तब से प्रेमचंद अबाध रूप से हिन्दी में लिखते रहे । उनके जीवन में निष्ठा और कठोर श्रम की प्रधानता थी । कर्म उनके निकट जीवन का एक

विशिष्ट अर्थ रहा है । प्रेमचंद उन मनुष्यों में थे, जो कर्म से सुख और संतोष की अनुभूति किया करते थे । यद्यपि उनका जीवन आर्थिक दृष्टि से सर्वथा विपन्न रहा, तथापि वे अपनी स्थिति और अपने भाग्य से सर्वथा संतुष्ट थे । वे निरंतर ऐसा अनुभव करते थे कि वे जितना कुछ चाहते थे, उससे कहीं अधिक उन्हें प्राप्त हुआ था । इस दृष्टि से वे अपने को सौभाग्यशाली ही मानते थे ।

इधर आर्थिक दृष्टि से प्रेमचंद जब अपने को सुखी महसूस कर रहे थे, तब उनका स्वास्थ्य शनैः - शनैः बिगड़ने लगा । पेचिश का रोग तो उन्हें पैतृक विरासत के रूप में मिला ही था, धीरे-धीरे वह जड़ पकड़ता गया । फिर भी वे लिखने से कभी विरत नहीं हुए । साहित्य की साधना वे अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक करते रहे ।

सन् 1920 ई. में उनके जीवन में एक अभूतपूर्व घटना घटी । असहयोग आंदोलन के सिलसिले में भारतीय राजनीति के सूत्रधार महात्मा गाँधी ने गोरखपुर में लगभग दो लाख श्रोताओं के बीच भाषण किया था । उनमें एक श्रोता प्रेमचंद भी थे । गाँधीजी के उस भाषण के संबंध में उन्होंने लिखा है - ''**महात्माजी के दर्शनों का यह प्रभाव था कि मुझ-जैसा मरा हुआ आदमी भी चेत उठा ।**'' वे गाँधीजी के भक्त हो गए । यहीं से उनके जीवन में परिवर्तन का नवीन संक्रमण देखने को मिलता है । उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया । इस प्रकार 175/- रु. मासिक आय का पिण्डदान कर बिना किसी स्थायी आमदनी का भरोसा किए वे अपनी कलम के भरोसे जीवन के क्षेत्र में कूद पड़े । उनका स्वास्थ्य भी इस समय बहुत अच्छा नहीं था । उनकी पत्नी की दृष्टि में उस समय उनका स्वास्थ्य खराब ही नहीं, सम्हाल कर रखने योग्य भी था । इस नाजुक स्थिति में दो बच्चों के पालन-पोषण का भार भी उन पर आ पड़ा था । फिर भी इन परिस्थितियों की उन्होंने थोड़ी भी चिन्ता नहीं की और सरकारी नौकरी से विरत होकर असहयोगियों की बढ़ती हुई भीड़ में

सम्मिलित हो गए । इस प्रकार उन्होंने अपने को सर्वथा साहित्य और राष्ट्र के हित अर्पित कर दिया । इस अवधि में जीविकोपार्जन के लिए उन्हें चरखा बना कर बेचना भी पड़ा । अपनी गरीबी को दूर करने के लिए उन्होंने सिनेमा कंपनियों के लिए कहानी लिखने का धन्धा भी शुरू किया, पर वे उसे बहुत दिनों तक निबाह नहीं सके । इसी बीच कुछ सज्जन अलवर-नरेश, (जो उपन्यास और कहानी के प्रेमी थे) का निमंत्रण लेकर आए । चार सौ रुपए मासिक, साथ में मोटर और बंगला की भी व्यवस्था थी, पर इस प्रलोभन में भी वे नहीं बँधे । राजा साहब के आदमियों से उन्होंने कहा - "मैं बागी आदमी हूँ, इसीलिए सरकारी नौकरी छोड़ दी ।" और राजा साहब को उन्होंने लिखा था - "..... मैं इतने में ही अपना सौभाग्य समझता हूँ कि आप मेरे लिखे को ध्यान से पढ़ते हैं ..... ।"

सन् 1921 ई. में **'माधुरी'** के संपादन का दायित्व उनके ऊपर सौंपा गया । अब तक साहित्यकार की हैसियत से उन्होंने काफी ख्याति प्राप्त कर ली थी । इसी समय युक्तप्रान्त के गवर्नर ने अपने एक मित्र से प्रेमचंद के पास संदेश भिजवाया कि सरकार उन्हें रायसाहब की उपाधि देना चाहती है । उपाधि की बात को वे हँसी में टाल गए, अपनी विचार-स्वतंत्रता को वे किसी भी कीमत पर बेचने को तैयार नहीं हुए । ये सारी घटनाएँ इस बात का पता देती हैं कि प्रेमचंद अपने स्वाभिमान को किसी भी कीमत पर बेचना नहीं चाहते थे । **'माधुरी'** के सम्पादन के साथ-ही-साथ सन् 1930 ई. में सरस्वती प्रेस, बनारस से उन्होंने **'हंस'** का सम्पादन प्रारंभ किया, पर अर्थाभाव के कारण वह बहुत दिनों तक सुचारु रूप से नहीं चल सका । प्रेमचंद का धंधा तो उनके लिए जीवन भर परेशानियों की ही सृष्टि करता रहा । पत्रकारिता ने उन्हें आर्थिक कठिनाइयों के बीच उलझा दिया । पत्रकारिता के घाटे को पूरा करने के लिए फिल्म कंपनी के निमंत्रण पर वे आठ हजार रुपए वार्षिक ठीके पर बंबई चले गए । पर, वहाँ उनकी तबीयत नहीं

जमी । साल भर बाद वे वहाँ से वापस चले आए । अब तब 'हंस' का घाटा बर्दाश्त के बाहर हो गया था । अतः, नई व्यवस्था की गई । भारतीय साहित्य-परिषद की ओर से **'हंस'** प्रेमचंद और कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी के सम्पादन में सरस्वती प्रेस से छप कर बंबई से प्रकाशित होने लगा । साझे का यह प्रकाशन इस तथ्य को विज्ञापित करता है कि आर्थिक दृष्टि से वे सर्वथा असफल रहे । उनके जीवन में आर्थिक दृष्टि से कभी ऐसा क्षण नहीं आया, जब कि वे अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की भी पूर्ति कर सके हों । श्रीमती प्रेमचंद ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद : घर में' में ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है, जिनसे यह ज्ञात होता है कि आर्थिक दृष्टि से वे निरंतर धनाभाव से पीड़ित रहे । पत्रकारिता में उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन की सारी कमाई अर्पित कर दी, पर वे उसे सुचारु रूप से नहीं चला सके । अब तक उनके बहुत सारे उपन्यास और कहानी-संग्रह प्रकाश में आ चुके थे और इन सारी पुस्तकों से वे जो कुछ भी अर्जित कर सके थे, सब उन्होंने पत्रकारिता को ही सौंप दिया । उनकी गरीबी जैसी-की तैसी ही बनी रही ।

किन्तु, आदमी वे थे जिंदादिल और धुन के पक्के । सचाई तो यह है कि वे दो बातों से बहुत परच गए थे । लापरवाही की हँसी और गरीबी उनके जीवन की दो प्रकृत विशेषताएँ थीं । वे इस बात से अत्यंत संतुष्ट थे कि उनका भाग्य गरीबों के साथ बंधा है । उन्होंने कभी इस बात की कल्पना भी नहीं की थी कि वे कभी धनी पुरुष भी बन सकेंगे । धनी व्यक्तियों से उन्हें एक प्रकार की वितृष्णा-सी हो गई थी । यह वितृष्णा **'खट्टे अंगूर'** का परिणाम नहीं थी, वरन् स्वभावज थी । उनका समस्त साहित्य-दलितों और शोषितों की सहानुभूति में लिखा गया है । उनके ग्रन्थों में शोषितों की जो पुंजीभूत घृणा, कटुता और विवशता की मार्मिक व्यंजना हुई है, वह बहुत कुछ इसलिए भी संभव हो पाई है कि गरीबी को उन्होंने न केवल निकट से देखा था, वरन् उसकी कटुता और विवशता का आस्वादन भी किया था । उन्होंने लेखकों को एक

VOP - 33 - 309

बार चेतावनी देते हुए कहा था कि ''जो धन की खोज में हैं, उन्हें सरस्वती के मंदिर में स्थान नहीं मिल सकता ।''

कला उनके जीवन की व्यसन थी, उसे उन्होंने व्यावसायिक रूप कभी भी प्रदान नहीं किया । आर्थिक दृष्टि होकर एक बार उन्होंने सिनेमा में अपनी प्रतिभा का सौदा किया था, पर यह सौदा उनके लिए अत्यंत महंगा पड़ा । उस सौदे के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को व्यंजित करते हुए उन्होंने डॉ.इन्द्रनाथ मदान को एक पत्र में लिखा था - **''एक साहित्यिक व्यक्ति के लिए सिनेमा में कोई स्थान नहीं है । मैं इस लाइन में इसलिए आया कि मुझे इसमें आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के कुछ अवसर दिखाई दिए । लेकिन, अब देखता हूँ कि मैं भ्रम में था और अब फिर साहित्य में लौट रहा हूँ । वास्तव में जिस साहित्य-कार्य को मैं अपने जीवन का उद्देश्य समझता हूँ, उसे मैंने कभी बन्द नहीं किया । सिनेमा मेरे लिए ऐसा ही है जैसा कि मेरे लिए वकालत होती, पर अंतर यह है कि वह इससे अच्छी चीज होती ।''** सिनेमा से लौटने के बाद ही उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास **'गोदान'** जैसा अमूल्य उपहार वे नहीं दे पाते । **'गोदान'** हिन्दी-जगत् के उनका ऐसा अंतिम उपहार है, जो तत्कालीन किसी भी साहित्य में श्रेष्ठता का भागी बन सकता है ।

इधर इस पर भारतीय साहित्य-परिषद का अधिकार हो चुका था । परिषद ने यह निश्चय किया कि इसके मुद्रण और प्रकाशन की व्यवस्था दिल्ली से की जाएगी । प्रेमचंद को परिषद के इस निश्चय से अपार मानसिक कष्ट हुआ । पत्रकारिता की असफलताओं ने उन्हें आर्थिक दृष्टि से अत्यंत खोखला कर दिया था । वे कठिन श्रम में तल्लीन रहे । उनके जीवन का एक सपना था कि वे अपने जीवन के अंतिम दिन अपने गाँव में ग्रामीण व्यक्तियों की सेवा में व्यतीत करें । इसीलिए वे कठोर श्रम करते थे । निष्क्रिय जीवन उनकी दृष्टि में निरर्थक था । उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक संघर्ष और त्याग का जीवन अपनाया था । इसीलिए

संघर्षों और कठिनाइयों में भी उन्हें एक विशेष सुख की अनुभूति होती थी । सिद्धांतों की रक्षा करने में कभी-कभी दुःख भी अत्यंत प्रिय प्रतीत होने लगता है । उनका ऐसा विश्वास था कि सत्य की विजय अंत में होती ही है, यही उनकी आध्यात्मिक जीवन की महानता का अनुभव था ।

प्रेमचंद अपने जमाने के एक महत्वपूर्ण अध्ययनशील व्यक्ति थे । वे एक ऐसे पाठक थे कि उन्हें जो कुछ भी मिलता था, उसे वे पढ़ते अवश्य थे । वे **'तिलस्म होशरूबा'**, **'चन्द्रकान्ता संतति'**, रोमांचक और साहित्यिक कहानियों से लेकर **बंकिमचन्द्र, टैगोर, टाल्स्टाय, स्कॉट, डिकेन्स, थैकरे, हार्डी, ह्यूगो और रोम्याँरोलाँ** जैसे गंभीर लेखकों की कृतियाँ पढ़ा करते थे । अगर कुछ नहीं मिलने पर नवलकिशोर प्रेस से प्रकाशित पुराणों के उर्दू अनुवाद तक को वे पढ़ डालते थे । **'मेरी पहली रचना'** और **'जीवन सार'** में अपनी इस अध्ययन निष्ठा की चर्चा उन्होंने स्वयं की है । प्रेमचंद की रचना का उद्देश्य समाज-सुधार था, और यह भी एक आश्चर्य की बात है कि समाज सुधारक प्रेमचंद **'चन्द्रकांता संतति'** जैसे सस्ते उपन्यासों का अध्ययन भी किया करते थे । इससे यह प्रमाणित होता है कि उन्हें कथा मात्र से प्रेम था । इसीलिए समाज-सुधारक प्रेमचंद की रचनाओं में कहीं भी कहानी-तत्व गौण होकर नहीं आया है । उनकी किस्सागोई का यही रहस्य है । उनकी विचित्र और बहुक्षेत्रीय पठन-सामग्री ने उनकी अनुभूतियों को अत्यंत समृद्ध बना दिया । इसीलिए वे अपने साहित्य में एक विराट जीवन का चित्र प्रस्तुत कर सके हैं ।

प्रेमचन्द को दैवी विधान में विश्वास नहीं था । ईश्वर उनके लिए मनुष्य का मानस-पुत्र था । उनकी ऐसी मान्यता थी कि धर्म और भाग्य का उपयोग अब तक गरीब और अपढ़ जनता के शोषण के निमित्त ही किया गया है । यही कारण है कि वे धर्म, भाग्य और भगवान के प्रति अनास्था पालने लगे । वैसे विश्व के मूल में वे किसी सर्वोच्च शक्ति के प्रति विश्वास रखते थे, पर यह उनके

चिंतन का परिणाम नहीं था, यह तो उनके संस्कारों की देन थी, जो उन्हें परंपरा से विरासत में मिली थी । वह प्रायः यह कहा करते थे कि "विश्व के मूल में स्थित शक्ति को जैसे चींटियों, मक्खियों या मच्छरों के जीवन से कुछ लेना-देना नहीं है, वैसे ही मनुष्य के कार्यों से भी उसका कोई सरोकार नहीं है ।" उस अलौकिक सत्ता के प्रति अंधविश्वास के कारण वे कभी नतमस्तक नहीं हुए । वे मानते थे कि अन्धविश्वास मानव की क्षमता और सामर्थ्य की हत्या कर डालता है ।

यह भी एक विचित्रता ही है कि नास्तिक प्रेमचंद गाँधीजी से अत्यंधिक प्रभावित थे, परंतु वे गाँधीजी की आस्तिकता से कभी भी प्रभावित नहीं हुए । उनकी राजनीति-चिंताओं ने ही उन्हें प्रभावित किया था । गाँधीजी से वे इसलिए भी प्रभावित थे कि उन्होंने गरीबों के दुःख के प्रति अपनी हमदर्दी विज्ञापित की थी । गाँधीजी से वे मिलना भी चाहते थे । कई बार उन्होंने कोशिश भी की, पर उन्हें सफलता नहीं मिल पाई । बाद में गाँधीजी ने उन्हें इन्दौर में भारत की राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार-विमर्श करने के लिए बुला भेजा था । सन् 1935 ई. में वे उनके संपर्क में चार दिनों तक रहे और उनसे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उनके नेतृत्व में उनकी आस्था और अधिक गहरी तथा बलवती हो गई । **'प्रेमाश्रम'** के सृजन के मूल में गाँधीवाद की प्रेरणाएँ अत्यंत उपजीव्य दिखाई पड़ती हैं । महात्माजी की तरह प्रेमचंद भी अपने साहित्य में गरीबों और शोषितों के पक्ष का समर्थन करते रहे । हिन्दी और उर्दू के मेल से वह भी गाँधीजी की तरह हिन्दू और मुस्लिमों के बीच सौहार्द्र की प्रतिष्ठा करना चाहते थे । धार्मिक कठमुल्लापन के वे सदैव विरोधी रहे । यही कारण था कि अंतर्जातीय विवाह का उन्होंने जी खोल कर स्वागत किया । उन्हें दकियानूसी सिद्धांतों और रूढ़ियों से घृणा थी । वे समाज में एक क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे, जिससे मनुष्य की कीमत मनुष्य के रूप में आंकी जा सके । मनुष्य द्वारा नारी पर किसी भी प्रकार के अत्याचार के वे तीव्र विरोधी थे । अकिंचन नारियों के लिए उचित व्यवस्था के

साथ ही वे तलाक का समर्थन करते थे । प्रेमचंद तलाक को अत्यंत अनिवार्य परिस्थिति में ही आवश्यक मानते थे । समानता के आधार पर तो तलाक का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । तलाक उनकी दृष्टि में अस्वस्थ व्यक्तिवाद का परिणाम था । समय की गतिशीलता के आधार पर वे सामाजिक नियमों में परिवर्तन की अपेक्षा मानते थे । रूसी सभ्यता की नई व्यवस्था उन्हें अत्यंत प्रिय थी । उस सभ्यता में जो सबसे अच्छी बात उन्हें दिखाई पड़ी, वह यह कि वहाँ मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण की श्रृंकला का सर्वथा अंत कर दिया गया था । भारत में भी वह इसी प्रकार के शोषणरहित समाज-व्यवस्था को प्रतिफलित देखना चाहते थे । उन्होंने अपनी पत्नी से एक बार कहा भी था कि इस देश में यदि क्रांति हुई, तो वह तो गरीबों के साथ मिल जाएँगे । उनका संपूर्ण साहित्य ही शोषणरहित-समाज की स्थापना के समर्थन में ही लिखा गया प्रतीत होता है । निश्चय ही, प्रेमचंद क्रांतिकारी की अपेक्षा सुधारक ही थे । क्रियात्मक कर्मठता का उनमें सदैव अभाव ही रहा । इस दृष्टि से उनकी पत्नी उनसे कहीं अधिक कर्मठ महिला रहीं । उन्होंने नमक-कानून तोड़ने के लिए अपने नगर की स्त्रियों को संगठित किया था । फलतः वह सन् 30-31 ई. के असहयोग आंदोलन में गिरफ़तार हो गई । प्रेमचंद को परिवार की देख-भाल के लिए घर पर ही रुक जाना पड़ा । किंतु, प्रेमचंद की भावनात्मक क्रियाशीलता के दर्शन तो हमें उनके सम्पूर्ण साहित्य में मिलते ही हैं । भावना के धरातल पर प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से जनान्दोलन की उचित पृष्ठभूमि निर्मित की थी । सन् 1905 ई. से लेकर सन् 1935 ई. तक की प्रत्येक राजनीतिक और सामाजिक गतिविधि का आकलन उन्होंने अपने साहित्य में अत्यंत सामर्थ्यपूर्ण ढंग से किया है ।

समाज-जीवन की प्रत्येक अवस्था के प्रति प्रेमचंद अत्यंत सजग थे । एक बार जब म्युनिसिपैलिटी की आज्ञा से वेश्याओं को शहर से निष्कासित किया जा रहा था, तो प्रेमचंद अत्यंत चिन्तित हो उठे थे । उनका विश्वास था कि इन समस्या का समाधान

महान आत्माएँ ही कर सकती हैं, जो धरती पर जन्म नहीं ले सकी हैं । वह स्वयं भी ऐसे नहीं थे, अतः वेश्याओं को उन्होंने दैवी विधान में विश्वास करने का परामर्श दिया था । यह एक प्रकार का व्यंग्य ही था । उनकी ऐसी धारणा थी कि इन अभागी स्त्रियों की मुक्ति ईश्वर भी नहीं कर सकता । उनका ऐसा विश्वास था कि सामाजिक नियम मनुष्य ने निर्धारित किए है, इनमें संशोधन भी मनुष्य ही कर सकता है । इसमें ईश्वर के हस्तक्षेप अथवा उनकी कृपा की अनिवार्यता उन्हें कहीं महसूस नहीं हुई । इस प्रकार अपनी बौद्धिकता के कारण ही वे ईश्वर के प्रति नास्तिकों की भी सप्रश्नता पालने लगे । अपने देश की सामाजिक रूढ़ियों की जटिलताओं से तंग आकर उन्होंने एक बार कहा था - ''इस देश की स्थिति को कमालपासा - जैसा तानाशाह ही संभाल सकता है ।''

प्रेमचंद अपने चिवारों को व्यंजित करने में अत्यंत निर्भीक और साहसी थे । वैसे पेचिश की संक्रामकता ने उन्हें अत्यंत अस्वस्थ बना दिया था, फिर भी अपनी दुर्बलता के बावजूद वे निरंतर कर्म की उपासना में तल्लीन ही रहे । यह जैसे मृत्यु को चुनौती देने के समान था । लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में सभापति-पद से बोलते हुए उन्होंने कहा था - ''साहित्यकार या कलाकार स्वभावतः प्रगतिशील होता है, अगर यह उसका स्वभाव न होता, तो शायद वह साहित्यकार ही न होता, उसे अपने अंदर भी एक कमी प्रतीत होती है और बाहर भी । इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन रहती है ।'' निश्चय ही प्रेमचंद की आत्मा अपने समाज, जीवन और व्यक्ति की रिक्ताताओं की पूर्ति में आखिरी साँस तक तल्लीन रही । इस अधिवेशन में अपनी साहित्य-संबंधी मान्यताओं को व्यंजित करते हुए उन्होंनें कहा था, ''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आभा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हम में गति संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं,

क्योंकि अब ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है ।'' इस प्रकार प्रेमचंद के साहित्य ने राष्ट्र की सोयी हुई आत्मा के अभ्युत्थान के लिए जो भावनात्मक सन्देश दिया है, वह भारतीय साहित्य में एक ऐतिहासिक महत्व का भागी बन गया है । वर्तमान पीढ़ी निश्चय ही प्रेमचंद को पाकर गौरवान्वित हुई है । इस प्रकार प्रेमचंद मरते दम तक अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रहित का चिंतन करते रहे । ऐसा कहा जाता है कि अपनी मृत्यु से कुछ सप्ताह पूर्व जब गोर्की के निधन का समाचार सुना, तो अपनी भयंकर अस्वस्थता के बावजूद उन्होंने अपने कार्यालय में एक शोक-सभा आयोजित करवाई थी, जिसमें उन्होंने उस महान आत्मा के प्रति अपनी लिखित श्रद्धांजलि अर्पित की थी ।

गोर्की की मृत्यु के दो महीने बाद प्रेमचंद अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर 8 अक्तूबर सन् 1936 ई. को सुख की चिरनिद्रा में सदा के लिए सो गए । ऐसा कहा जाता है कि मृत्यु का आभास पाकर उन्होंने अपनी मृत्यु के कुछ दिन पूर्व अपने दो अभिन्न मित्रों, दयानारायण निगम और जैनेन्द्र कुमार को बनारस बुलवा लिया था । निगम साहब से मिलने पर उन्होंने कहा था, ''दुबारा मुलाकात की उम्मीद नहीं ।'' 7 अक्टूबर की रात को वे बहुत देर तक जैनेन्द्र कुमार से 'हंस' और साहित्य के बारे में बातचीत करते रहे । सबेरा होते-होते मूर्च्छा आई और फिर उनकी चेतना वापस नहीं लौटी । मरने के समय उनकी अवस्था मुश्किल से 56 वर्ष की थी, पर वे आज भी उन असंख्य जनता के हृदय में जीवित हैं, जिनकी सेवा वे जीवन भर करते रहे थे । सच तो यह है कि तुलसीदास के बाद उनकी लोकप्रियता को पाने वाले दूसरे व्यक्ति प्रेमचंद ही थे । उनकी सादगी और मानवता, मानवता की एक कभी न समाप्त होने वाली कहानी बन गई है । कवि चण्डीदास की तरह प्रेमचंद ने भी मानव को चरम सत्य के रूप में स्वीकारा था । वे निरंतर मनुष्य के अंदर के सत्य, शिव और सुन्दर की आराधना में तल्लीन रहे । ''वे जीवन के दर्शक भर ही नहीं थे, बल्कि उसके ऐसे स्रष्टा भी थे, जो धूल और मिट्टी से सुन्दर

मूर्तियाँ बनाकर उसे आकार प्रदान करता है । उनकी ढीली-ढाली पोशोक, बेतरतीब मूँछें, बिखरे और रूखे बाल, बिना फीते के जूते, बच्चों जैसा कौतूहल, निर्दोष हँसी के ठहाके और सबसे अधिक उनका सरल व्यवहार मिलने वालों पर गहरी छाप छोड़ते थे । वे अपने भीतर घायल हृदय छिपाए हुए थे, जो मनुष्य की पीड़ा को देखते ही बह निकलता था । उन्होंने उस पीड़ा को दूर करने के लिए जनता में उनके विरुद्ध सामाजिक चेतना जागृत की । अपने जीवन और कला में वे मानवतावादी बने रहे ।''

कहानी-संग्रह

सप्तसरोज, अग्नि-समाधि, नवनिधि, प्रेरणा, प्रेम पचीसी, प्रेम पूर्णिमा, प्रेम-प्रसून, प्रेमतीर्थ, प्रेम प्रतिमा, प्रेम प्रमोद, प्रेम द्वादशी, प्रेम पंचमी, प्रेम चतुर्थी, पाँच फूल, कफन, समर यात्रा, मानसरोवर (आठ भाग), गुप्तधन (दो खण्ड) ।

उर्दू-कहानी-संग्रह

प्रेम पचीसी, प्रेम बतीसी, प्रेम चालीसा, सोजे वतन, फिरदोसे खयाल, जादे राह, दुख की कीमत, वारदात, आखिरी तोहफा ख्वाबो खयाल, खाके परवाना ।

उपन्यास

प्रतिज्ञा, वरदान, सेवासदन (1907), निर्मला (1923), रंगभूमि (1924), कायाकल्प (1928), गबन (1930), कर्मभूमि (1932), प्रेमाश्रम (1932), गोदान (1936), मंगल सूत्र अपूर्ण । मंगलचरण (1936) । (इसमें प्रेमचंद के चार प्रारंभिक उपन्यासों का संकलन उनके पुत्र अमृतराय ने किया है : प्रेमा, रूठी रानी, हम खुर्मा व हम सवाब और असरारे मआविद) ।

नाटक

कर्बला, रूहानी शादी, संग्रमा, प्रेम की वेदी ।

निबंध

कुछ विचार (दो भाग) कलम, तेग और तलवार, विविध प्रसंग (तीन खण्डों में) ।

जीवनियाँ - महात्मा शेखशादी, दुर्गादास ।

बाल-साहित्य - कुत्ते की कहानी, जंगल की कहानियाँ, राम चर्चा, मनमोदक ।

अनुवाद

टाल्स्टाय की कहानियाँ, सुखदास (जार्ज इलियट के 'साईलस मैरीनर' का अनुवाद), अहंकार (अनातोले फ्रान्स के 'थाया' का अनुवाद), चाँदी की डिबिया (गाल्सवर्दी के 'सिलवर बक्त' का अनुवाद), न्याय (गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' का अनुवाद), हड़ताल (गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' का अनुवाद), आजाद कथा (रतननाथ सरशार के 'फिशाना ए आजाद' का अनुवाद)

पत्र-साहित्य - चिट्ठी-पत्री (दो खण्डों में)

2.6. प्रेमचंद की साहित्य विशेषताएँ

यदि यह कहा जाय कि प्रेमचंद ने हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा को परिपक प्रौढ़ता प्रदान की तो अनुचित नहीं होगा । प्रेमचंद की लेखनी से हिंदी साहित्य को जो उपन्यास उपलब्ध हुए, वे इस प्रकार हैं ।

1. सेवादसन
2. प्रेमाश्रम
3. रंगभूमि
4. कायाकल्प
5. वरदान
6. निर्मला
7. प्रतीज्ञा
8. गबन
9. कर्मभूमि और
10. गोदान

इन उपन्यासों के अतिरिक्त प्रेमचंदजी ने करीब 300 कहानियाँ भी लिखीं । 224 कहानियों की सूची अमृतराय की

पुस्तक 'कलम का सिपाही' में ही उपलब्ध है और संभवतः और भी कुछ रचनाएँ उपलब्ध हो जायें ।

एक उपन्यासकार और साहित्यकार की दृष्टि से प्रेमचंदजी का स्थान निर्धारित करने से पूर्व यह आवश्यक है कि उनके जीवन दर्शन की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की जाय । प्रेमचंदजी ने समाज की भटकाव समस्याएँ और आम आदमी के जीवन का तनाव और भटकाव अपनी कृतियों में सहज आकर्षक रूप से प्रस्तुत किया है । उनकी रचनाओं का सर्वेक्षणों करने पर जो विषय उनके द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं, उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है -

1. भारतीय गाँवों में रहनेवाले किसान की आर्थिक दुर्दशा, उसका शोषण एवं उत्पीडन ।
2. हिन्दू समाज में दहेज-प्रथा ग्रस्त विवाह व्यवस्था, और सौतेली माँ तथा विधवा स्त्री का जीवन ।
3. मनोरंजन के साधन ग्रामीण खेल (कबड्डी) गुल्लीडंडा आदि ।
4. ग्रामीण और नागरिक समाज के जीवन मूल्य और शोषण की प्रक्रिया ।
5. निर्धन-मध्यम एवं धनी वर्गों में विभक्त समाज और सामाजिक शोषण में इन वर्गों की भूमिका ।
6. सांप्रदायिक तनाव, अंधविश्वास, अशिक्षा, छुआछूत और ऐसे ही अन्य तत्व जो समाज में बिखराव उत्पन्न करते हैं ।
7. पाश्चात्य नागरिक सभ्यता का भारतीय ग्रामीण जीवन पर प्रभाव और जीवन मूल्यों में टकराव ।
8. सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय जागरण ।

प्रेमचंद ने इन विषयों को अपने उपन्यासों और कहानियों का कथावस्तु के माध्यम से उठाया और समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया । इस प्रसंग में यह बात बहुत महत्वपूर्ण है कि यथार्थ का चित्रण करते हुए उन्होंने हिंसा या अराजकता का नारा नहीं

उठाया । वर्ग संघर्ष हेतु भी कोई अति क्रांतिकारी नारा नहीं दिया अपितु विश्वबंधुत्व के मानवीय आदर्शवाद का महत्व सदैव प्रतिपादित किया । यथार्थ के चित्रण में न तो उन्होंने कोई कोरा बौद्धिक समझौता किया और न ही कठोर सत्य को कहने में किसी प्रकार की कमजोरी दिखाई । समाज की साफ-साफ तस्वीर अपने पाठकों के सामने पूर्ण ईमानदारी के साथ उन्होंने प्रस्तुत की । बात कहने का ढंग इतना सरल था कि सामान्य जन भी उनकी बात को आसानी से समझ सके । उनके कहने के ढंग में अद्‌भुत सामाजिक राजनैतिक दर्शन का समावेश था । इसी कारण से जहाँ उनका साहित्य सामान्य जन में आदर का स्थान प्राप्त करना था, वही उन्नत बुद्धिजीवी वर्ग भी प्रेमचंद की पैनी बौद्धिक क्षमता का कायल था ।

प्रेमचंद की पूरी साहित्यिक अभिव्यक्ति जीवन के प्रति पूर्ण आस्था और विश्वास से ओत प्रोत थी । सामाजिक अन्याय, अंधविश्वास, कुरीतियाँ, शोषण आदि उन समस्त अमानवीय विचारों और प्रथाओं पर अपनी साहित्यिक अभिव्यक्ति से उन्होंने पूरी शक्ति के साथ आक्रमण किया । इस दृष्टि से प्रेमचंद हमारे साहित्य के इतिहास में क्रांति के स्रष्टा थे । जहाँ कहीं भी वे निरंकुशता और उत्पीडन देखते थे, तुरंत पूरी शक्ति के साथ अन्याय के विरुद्ध संघर्ष में खड़े हो जाते थे और सच्चे अर्थों में ''कलम के सिपाही'' बन जाते थे । यद्यपि वे सरकारी नौकरी में थे, फिर भी विदेशी शासन और दासता के विरुद्ध लिखने में उन्होंने अपनी कलम उठाई । मजदूरों और किसानों के प्रति तो उनके मन में अटूट प्यार था और वे अपने लेखन में निरंतर उनकी वास्तविक समस्याओं को उठाते थे । महात्मा गाँधी के विचारों से अधिक प्रभावित होने के कारण उनके लेखन में मानव प्रेम और अहिंसा के सिद्धांत की झलक सर्वत्र बनी दिखाई देती है ।

प्रेमचंदजी ने अपने पाठकों का एक बहुत विशाल समुदाय उत्पन्न कर दिया था । ऐसा लगता है कि अधिकाधिक पाठकों तक

पहुँचने की उनकी अभिलाषा अत्यंत उत्कट थी । और इसी अभिलाषा से प्रेरित होकर उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में ऐसी भाषा का उपयोग किया जो साधारण पाठक की समझ में आ जाये । अतः हिंदी और उर्दू के भाषा शास्त्रीय और राजनैतिक विवाद में पड़े बिना, उन्होंने उर्दू में और हिंदी में बिना किसी दुराग्रह के साथ लिखा और परिणामतः उनके लेखन में सरलता और सरसता का स्रोत निरंतर बहता रहा । उनके साहित्य को कितना भी पढ़ा जाय पाठक को कभी थकावट या ऊब जाने का भान तक नहीं होता । प्रेमचंद की भाषा में प्रवाह निरंतर बना रहता है । भाव प्रतिपादन की दृष्टि से प्रेमचंद ने मानवीय हृदय के स्वार्थ और औदार्य के संघर्ष में औदार्य भाव की श्रेष्ठता द्वारा मानव जीवन को एक नई दिशा देने का प्रयत्न किया है । उनके उपन्यासों और कहानियों की विषय वस्तु में कल्पना का अंश बहुत ही कम है । विषय वस्तु का आधार कोई न कोई प्रेरणा या अनुभव है, जिसके पीछे किसी न किसी घटना का महत्वपूर्ण स्थान है । और वे अपनी कलम से उस घटना का भावात्मक या तथ्यात्मक केन्द्र बिन्दु अपनी रचना में उतारते हैं । अतः उनका साहित्य मात्र घटनाओं का वर्णन नहीं है ।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से पीड़ित और शोषित भारतीय समाज के सामाजिक नैतिक विरोधाभासों को बहुत ही सशक्त रूप से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया । यहाँ उपन्यासों और कहानियों के कुछ अंश इस बात का परिचय दे सकते हैं ।

प्रेमचंद के प्रारंभिक उपन्यासों में एक उपन्यास है **'प्रेमा'** । यह मूल उर्दू उपन्यास का हिन्दी रूपांतर था । इस उपन्यास में नायक अपनी वाग्दत्ता 'प्रेमा' से विवाह न करके एक तरुणी विधवा पूर्णा से विवाह करता है । इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंदजी ने प्रतिगामी सामाजिक शक्तियों और अंध धार्मिकता के नाम पर पनपती हुई उन बुराइयों और कुरीतियों को उभारा है, जो समाज

को पतन के गति की ओर ले जाती हैं । स्वस्थ समाज निर्माण की दिशा में श्री प्रेमचंदजी का यह साहित्यिक अभियान था । ऐसे ही एक अन्य उपन्यास 'कृष्णा' की भी सूचना मिलती है, पर यह अब उपलब्ध नहीं है । एक अन्य उपन्यास 'वरदान' भी उनकी प्रारंभिक कृतियों में से एक है । इन प्रारंभिक काल के उपन्यासों में प्रेमचंद की सामाजिक चेतना के संस्कार प्रस्फुरित होते हुए दिखाते हैं यद्यपि प्रौढ़ साहित्य की सृष्टि से इन उपन्यासों का अधिक महत्व नहीं है, परंतु प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकार के कृतित्व का विवेचन करने में उनकी प्रारंभिक रचनाओं को नकारा नहीं जा सकता ।

2.6.1. सेवासदन

सन् 1916 और 1917 के मध्य प्रेमचंद जी ने अपना पहला बड़ा उपन्यास लिखा जो 1918 में **'सेवासदन'** नाम से प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास को आलोचकों ने पहला महान् समाजिक उपन्यास माना है । इस उपन्यास में जीवन की कटु और कठोर परिस्थितियों का चित्रण है । यह उपन्यास नायिका 'सुमन' के जीवन की परिस्थितियों को सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता है । सुमन का विवाह एक गरीब व्यक्ति से होता है, जो सुमन को सुखी और सुविधा संपन्न जीवन नहीं दे पाता है । परिस्थितियों से बाध्य होकर 'सुमन' एक वेश्या के घर में शरण लेने पर मजबूर हो जाती है और यहाँ समाज के उन पुराण पन्थी, रूढ़िवादी लोगों के जीवन को निकट से देखती है, जो वेश्या के चरणों में तो अपना सिर झुकाते हैं लेकिन अधर्म के मार्ग से मुक्त होने का प्रयत्न करने वाली नारी को घृणा की दृष्टि से देखते हैं ।

2.6.2. प्रेमाश्रम

प्रेमचंद का दूसरा बड़ा उपन्यास **'प्रेमाश्रम'** था जिसे उन्होंने सन् 1920 में लिखा । इस उपन्यास में पराधीन भारत के राष्ट्रीय आंदोलनों और महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आंदोलनों की छाप है ।

इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद ने भारतीय किसानों के उत्पीडन का चित्र प्रस्तुत किया है । उपन्यास के दो पात्र हैं, प्रेमशंकर और ज्ञानशंकर । प्रेमशंकर धैर्य और सहनशीलता के उदार गुणों से सम्पन्न एक ऐसे आदर्श व्यक्ति हैं, जिनकी कल्पना प्रेमचंद ने समाज के आदर्श मनुष्य के रूप में की है । दूसरी ओर ज्ञानशंकर अन्याय, शोषण और अधार्मिकता के प्रतीक हैं । उपन्यास में सत्य और असत्य, धर्म और अधर्म तथा मानवीय मूल्य और अमानवीय शोषण के संघर्ष का चित्रण है । प्रेम ही मानव जीवन का आधार है । यह बात प्रेमचंद इस उपन्यास के माध्यम से स्पष्ट करते हैं ।

2.6.3. रंगभूमि

सन् 1922-1924 के बीच में उन्होंने अपना बृहद् उपन्यास **'रंगभूमि'** लिखा । 'रंगभूमि' जनपदीय पृष्ठभूमि पर लिखा गया एक ऐसा उपन्यास है, जिसके कथानक में जीवन के विविध रूपों का चित्रण हुआ है । उपन्यास का नायक एक अंधा भिखारी है, जिसका नाम है 'सूरदास' । पैसा माँगने के लिए वह वाहनों के पीछे पीछे दौड़ता है । यद्यपि वह भिखारी है । फिर भी उसमें अटूट आत्मसम्मान की भावना है । सार्वजनिक हित के लिए उस भिखारी में मर मिटने की उदार मानवीय भावना है । एक अन्य पात्र है श्रीजान सेवक जो ईसाई परिवार के हैं । श्रीजान धन कमाने के लिए गाँव में एक सिगरेट का कारखाना स्थापित करते हैं । अनेक धनी चरित्र हैं जो यश, स्वार्थ आदि की भावनाओं से ग्रस्त हैं और अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु ही निरंतर अशान्त हैं । उपन्यास की मार्मिक परिणति उस घटना में है जहाँ सूरदास अपनी जलती हुई झोंपडी में कूद कर मर जाता है । इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद ने औद्योगिकता के नाम पर होनेवाले शोषण का चित्र प्रस्तुत किया है । नैतिकता और मानवीय मूल्यों की स्थापना और अभिवृद्धि को सामाजिक स्थायित्व के लिए अनिवार्य आवश्यकता माना है । सामाजिक विषमताओं को समाप्त करने के

लिए आंदोलन द्वारा सर्वांगीय जनजागृति की संभावनाओं का संकेत प्रेमचंदजी ने इस उपन्यास में दिया है । ग्रामीण जीवन और शहरी-जीवन के विरोधाभासों और परस्पर टकराव को प्रेमचंदजी ने बहुत ही सशक्त रूप से 'रंगभूमि' में उभारा है ।

2.6.4. गबन

सन् 1931 में प्रेमचंदजी का उपन्यास **'गबन'** प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास में स्त्रियों की आभूषणों के प्रति सहज रुचि और इनके भयंकर परिणामों को उपन्यास का केंद्रबिन्दु माना जा सकता है । गबन की नायिका 'जालपा' एक कम वेतन पानेवाले कर्मचारी की पत्नी है । उसका पति उसके सामने बहुत धनी व्यक्ति होने का अभिनय करता है । 'जालपा' एक चंद्रहार पाने का हठ करती है, तो उसका क्लर्क पति अपने कार्यालय से कुछ रुपयों का गबन करना है । परिणामतः वह भागकर कलकत्ता चला जाता है जहाँ एक झूठे आरोप में वह पुलिस द्वारा पकड़ा जाता है । पुलिस की तानाशाही वृत्ति के विरोध में एक बड़ी जन-जागृति प्रारंभ होती है और उपन्यास का कथानक एक विराट जन आंदोलन के रूप में परिणत होता है ।

2.6.5. कर्मभूमि

सन् 1932 में प्रेमचंद का एक अन्य उपन्यास **'कर्मभूमि'** प्रकाशित हुआ । इस उपन्यास में प्रेमचंदजी के क्रांतिकारी उपन्यासकार का उत्तम रूप पाठकों के सामने आया है । इस उपन्यास के माध्यम से राष्ट्रीय स्वतंत्रता हेतु समस्त देश में फैली हुई क्रांति चेतना का चित्रण लेखक ने किया है । इस उपन्यास के सभी पात्र क्रांति की ज्वाला लिए हुए हैं । यद्यपि उपन्यास में क्रांतिकारी विचारों का प्रतिपादन किया गया है, तथापि अहिंसा को एक उत्तम जीवनमूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है । 'कर्मभूमि' राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद जी की सबसे अधिक प्रौढ़ और क्रांति चेतना की श्रेष्ठ रचना है ।

2.6.6. गोदान

सन् 1936 में प्रेमचंद जी का अंतिम उपन्यास **'गोदान'** प्रकाशित हुआ । 'गोदान' प्रेमचंद जी की श्रेष्ठतम साहित्यिक कृति है । इस उपन्यास में श्रमजीवी वर्ग के शोषण का चाहे वह खेत में हो या कारखाने में बहुत ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है । उपन्यास का पात्र 'होरी' भारतीय किसान के शोषण और उत्पीडन का प्रतीक है । अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए 'होरी' के कष्टमय जीवन का ऐसा जीवंत चित्रण प्रेमचंद ने किया है कि पाठक बिना आँसू बहाये नहीं रह सकता । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने भारतीय किसान जीवन का जितना सजीव और अधिकारपूर्ण चित्रण किया है वैसा अब तक कोई लेखक नहीं कर पाया है ।

उपन्यास के साथ साथ प्रेमचंद बहुत सबल और सफल कहानीकार भी थे । अपनी कहानियों के माध्यम से उन्होंने मानव जीवन के कई भावनात्मक चित्रों को पाठकों के सामने रखा है । यदि यह कहा जाय कि प्रेमचंद उपन्यासकार की अपेक्षा कहानीकार अधिक थे तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । उनकी कहानियों में कुछ महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं ।

1.	बडे घर की बेटी	8.	क्षमा
2.	पंचपरमेश्वर	9.	रानी सारंधा
3.	ईश्वरीय न्याय	10.	पूस की रात
4.	नमक का दारोगा	11.	सवा सेर गेहूँ
5.	बूढी काकी	12.	ठाकुर का कुआँ
6.	आत्माराम	13.	मोटेराम शास्त्री
7.	ईदगाह	14.	शतरंज के खिलाड़ी आदि,

इन कहानियों के पात्र मानव हृदय में व्याप्त स्वार्थ और लोभ तथा दया और उदारता जैसे विषयों को प्रस्तुत करते हैं । पारिवारिक जीवन के अंतर्विरोध, कुरीतियाँ, अंधविश्वास, तनाव,

पीड़ा और ऐसे ही अनेक भावनात्मक पक्ष हमें प्रेमचंद की कहानियाँ में मिलते हैं । जीवन की सजीवता और व्यथा किस प्रकार कदम कदम पर उभरती है यह प्रेमचंद जी की कहानियों का केंद्रीय सूत्र है ।

उपन्यासों और कहानियों के अतिरिक्त प्रेमचंद जी ने कुछ स्वतंत्र निबंध और सामाजिक विषयों पर समाचार पत्रों में टिप्पणियाँ भी लिखी थी । उन सब में भी प्रेमचंद जी के ईमानदार साहित्यिक व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है ।

प्रेमचंद जी किसी विशेष राजनैतिक विचार धारा से बंधे हुए नहीं थे, और न ही किसी राजनैतिक हल के साथ सक्रिय रूप से संबद्ध । फिर भी उनके साहित्य पर समाजवादी चेतना और गाँधीवादी दर्शन का बहुत ही व्यापक प्रभाव है । उनका साहित्य इस बात का स्पष्ट संकेत देता है कि उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ मानवीय जीवन को सामाजिक पृष्ठभूमि में देखा और ऐसे मनुष्य और समाज की कल्पना की थी जिसमें शोषण, उत्पीडन, तनाव और विरोधभास नहीं हो । उनका व्यक्तिगत जीवन आर्थिक कष्ट और पारिवारिक संकष्ट से ग्रस्त रहा । फिर भी उन्होंने भारतीय समाज को ऐसा साहित्य समर्पित किया जो अतुलनीय है ।

2.7 .प्रेमचंद की उपन्यास में तत्कालीन सामाजिक जीवन

उपन्यास विधा में सामाजिक जीवन का सही चित्रण सर्वप्रथम आवश्यकता है । प्रेमचंद के समय में भारतीय समाज राजनैतिक स्वतंत्रता और सामाजिक पुननिर्माण के आंदोलनकारी समय से गुजर रहा था । महात्मा गाँधी के भारतीय सामाजिक राजनैतिक जीवन के आविर्भाव से पूरा भारतीय समाज जन जागरण के आंदोलनों में लगा हुआ था । प्रेमचंदजी के उपन्यासों में इस जागरण आंदोलन का पूर्ण प्रभाव है । साथ ही अपने उपन्यासों में उन्होंने उन सभी मुद्दों को उठाया है जो सामाजिक पुननिर्माण के मार्ग में बाधक बन रहे हैं । यदि प्रेमचंदजी के उपन्यासों को

विहंगम दृष्टि से देखा जाय तो यह स्पष्ट होगा कि तीन तत्व उनके उपन्यासों के कथानकों का आधार है । पहला व्यक्ति का उत्पीडन करने वाली धार्मिक और सामाजिक रूढ़ मान्यताओं का विरोध । दूसरा आर्थिक एकाधिकार और पूँजीवादी व्यवस्था से सामान्य जन के आर्थिक शोषण का चित्रण, और तीसरा राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु विदेशी शासन और जमींदारी प्रथा का विरोध । परंतु प्रमुख रूप से प्रेमचंदजी का ध्यान गाँवों में रहने वाले गरीब किसानों की दशा पर अधिक केंद्रित है । विदेशी शासन और आर्थिक दुर्व्यवस्था तथा जमींदारी प्रथा का सबसे अधिक बुरा प्रभाव गाँव के उस किसान पर ही अधिक पड़ता है जो जीवन भर कठोर शारीरिक श्रम करते भी एक दिन भी सुख की नींद नहीं सो सकता । उसका उत्पीड़न और शोषण व्यवस्था का एक शाश्वत अंग है, और जब तक ऐसी व्यवस्था को बदला नहीं जाय मानवता को दासता से मुक्ति नहीं मिल सकती । प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों में सामाजिक पुनर्निमाण में बाधक उन सभी तत्वों को पाठक के सामने रखा । सम्मिलित परिवार की विषमताएँ, नारीवर्ग की असहाय स्थिति, धर्म और जाति के नाम पर समाज में फैला हुआ भेदभाव और पाखण्ड, सामाजिक कुरीतियाँ अशिक्षा जन्य अंधविश्वास, नैतिक जीवन में ढोंग और आडम्बर, श्रमजीवी वर्ग, यथा मजदूर-किसान की आर्थिक दुरवस्था, जमींदारों की निरंकुशता सरकारी कर्मचारियों का अन्याय अत्याचार और इन सब में होने वाले नैतिक और मानवीय मूल्यों का ह्रास ! ये सभी विषय प्रेमचंद जी के उपन्यासों में यंत्र तंत्र सर्वत्र बिखरे हुए हैं और उन्होंने इन सबका बहुत ही सजीव एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है । अपने कई उपन्यासों में प्रेमचंद ने समस्याओं को उठाया है । परिवार की छोटी छोटी समस्याओं का उन्होंने व्यापक संदर्भ में चित्रण किया । ग्रामीण वातावरण के चित्रण में उनकी प्रतिभा अत्यंत प्रखर रूप से उतरी थी । उपन्यास कला प्रेमचंद की सहज प्रतिभा के अनुरूप प्रतीत होती है । उनके उपन्यासों की घटनाएँ और पात्र परिचय पाठकों को अपने जाने पहचाने से लगते है । कथावस्तु के

प्रस्तुतीकरण में कोई अनायास आवेग या रहस्यमय उलझन नहीं आती और उपन्यास की गति एक जैसी होकर उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करती है । प्रेमचंद ने उपन्यास विधा का उपयोग परिवार या वर्ग की परिस्थितियों का अंकन करने के लिए किया । एक महत्वपूर्ण बात प्रेमचंद जी के उपन्यासों में यह है कि उपन्यासों की कथावस्तु न तो चरित्र प्रधान है और न ही घटना प्रधान । एक ही घटना से या एक ही चरित्र से वे कथानक का सूत्रपात करते हैं और सहज-स्वाभाविक रूप से कथावस्तु की रचना होती जाती है । और नये नये चरित्र और नई नई धारणाएँ इसमें जुडती जाती है ।

प्रेमचंद के उपन्यासों का प्रत्येक पात्र व्यक्ति होकर भी पूरे वर्ग का प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करता है । इस दृष्टि से प्रेमचंदजी ने व्यक्ति के चरित्र चित्रण को वर्ग के चरित्र के रूप में उपस्थित करके साधारण पाठक को अपने उपन्यास के कथानक से जोड़कर परिचयात्मक तादात्म्य प्रस्तुत किया है ।

कथानक का प्रस्तुतीकरण करने में प्रेमचंद जी ने वर्णन और वार्तालाप सम्यक् उपयोग किया है । पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग से प्रेमचंद ने भाषा पर असाधारण अधिकार का परिचय दिया है । प्रेमचंद की उपन्यास कला का विश्लेषण करने के लिए उनका कोई भी उपन्यास लिया जा सकता है । 'गोदान' प्रेमचंद का बहुचर्चित उपन्यास है । गोदान के कथानक से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचंद ने उपन्यास विधा को उन्नति के उच्चतम स्थान पर आरूढ़ किया । 'गोदान' के माध्यम से प्रेमचंद जी नें जिन समस्याओं को उठाया हैं वे समाज का सही चित्र प्रस्तुत करती हैं ।

2.8. बोध प्रश्न

1. प्रेमचंद की जीवनी तथा व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए ।
2. प्रेमचंद की उपन्यासों में चित्रित मुख्य समस्याओं की समीक्षा कीजिए ।

2.9. संदर्भ ग्रन्थ

1. गोदान - प्रेमचंद
2. गोदान - मूल्यांकन और मूल्यांकन - सं.इन्द्रनाथ मदान
3. प्रेमचंद और उनका युग - डॉ.रामबिलास शर्मा
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डॉ.नगेन्द्र

NOTES

NOTES

इकाई तीन : उपन्यास - 'प्रतिज्ञा' - एक विवेचन

इकाई की रूपरेखा

3.0. उद्देश्य

3.1. प्रस्तावना

3.2. उपन्यासकार का परिचय

3.3. कृतियाँ

3.4. कथानक

3.5. कथानक की आलोचना

3.6. कथोपकथन

3.7. बोध प्रश्न

3.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में आपने उपन्यास सम्राट प्रेमचंद के जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में अध्ययन किया तथा जानकारी भी प्राप्त कर लीं । इसके अध्ययन के बाद आप **'उपन्यास सम्राट प्रेमचंद'** के साहित्य से परिचित हो गए होंगे ।

3.1. प्रस्तावना

इस इकाई में प्रेमचंद विरचित **'प्रतिज्ञा'** उपन्यास का सार जानेंगे । तदनंतर आप कथानक की आलोचना भी जानेंगे । इस इकाई के अंत में आप कथोपकथन और वार्तालाप भी जानेंगे ।

3.2. उपन्यासकार का परिचय

मुंशी प्रेमचन्द का जन्म सन् 1880, शनिवार, 31 जुलाई को बनारस से चार मील दूर लमही गाँव में हुआ । इनका वास्तविक नाम धनपतराय था । चाचा नवाबराय कहकर पुकारते थे ।

प्रेमचंद का बचपन गरीबी की दास्तान था । स्वयं उन्हीं के शब्दों में ''अंधेरा के पुल का चमरौधा जूता मैंने बहुत दिन तक पहना है । जब तक मेरे पिताजी जीवित रहे, तब तक उन्होंने मेरे लिए बारह आने से ज्यादा का जूता कभी नहीं खरीदा और न चार आने गज़ से ज्यादा का कपड़ा कभी मेरे लिए खरीदा गया .... ।''

बचपन से प्रेमचंद में पढ़ने की धुन थी । वे लगातार ''तिलस्म होशरूबा'' पढ़ते रहते वह कभी न खतम होनेवाली लम्बी दास्तान जो अपनी विशालता के लिए मशहूर थी । एक साल तक 'तिलस्म होशरूबा' का चक्कर चला और यहीं से कथाकार प्रेमचंद ने साहित्यिक तैयारी शुरू की ।

उनके जीवन की डगर निरंतर गरीबी के बीचों-बीच जा रही थी, इससे बचने की कोई सूरत न थी । प्रारंभिक जीवन की घटनाओं और अनुभवों के आधार पर प्रेमचंद ने जीवन की समस्याओं और आवश्यकताओं के बारे में विशेष दृष्टिकोण बना लिया था । विचार और व्यवहार से वे बहुत ही सरल स्वभाव थे ।

'प्रेमचंद' शुरू में नवाबराय के नाम से लिखा करते थे और यह नाम उन्हें बहुत प्रिय था क्योंकि उनके घर में उन्हें प्यार से 'नवाब' के नाम से पुकारा करते थे और यह नाम हिन्दू-मुसलमानों में सांस्कृतिक एकता की याद भी ताज़ा रखनेवाला था । परंतु जब 'सोज़े वतन' की बे-जाब्ता जब्ती के बाद उनके अफसरों ने उनके लिखने पर पाबन्दी लगाई तो उन्हें इस नाम को छोड़ देना पड़ा । इन संकीर्ण प्रवृत्ति अफसरों का वंश चलता तो आज भारतीय साहित्य में प्रेमचंद का अस्तित्व ही न होता । मगर नदी की धारा किसने रोकी है और हवा की दिशा कौन बदल सकता है ? 'नवाबराय' की आत्मा ने प्रेमचंद का शरीर धारण किया ।

3.3. कृतियाँ

प्रेमचंद ने सब मिलाकर कुल दस उपन्यास लिखे हैं । ग्यारहवाँ "मंगलसूत्र" वे अधूरा छोड़ गये । ऐसा ज्ञात होता है कि 'वरदान' और 'प्रतिज्ञा' सबसे पहले लिखे गये, पर इनके लिखने का ठीक समय मालूम नहीं । पर इतना निश्चित है कि वे किसी न किसी रूप में 'सेवासदन' से पहले लिखे गये थे । प्रतिज्ञा के संबंध में ऐसा मालूम होता है कि वह पहले उर्दू में "हमखुर्मा और हमसबाब" नाम से प्रकाशित हुआ था । यह शायद 1905 के लगभग की बात है । उनके उपन्यासों का क्रम इस प्रकार ठहरता है - **प्रेमा या प्रतिज्ञा 1905, वरदान इसी के लगभग, सेवासदन 1916, प्रेमाश्रम 1922, निर्मला 1923, रंगभूमि 1925, कायाकल्प 1928, गबन 1931, कर्मभूमि 1932, गोदान 1936, मंगलसूत्र** अधूरा छोड़ गये ।

प्रेमचंद ने अपने जीवन-काल में 300 के करीब कहानियाँ लिखीं, इसलिए कहानी लेखक के रूप में उनका महत्व उपन्यासकार के रूप में उनके महत्व से कम नहीं है ।

''प्रतिज्ञा'' का संबंध मध्यवर्ग के जीवन से है । यह 1905 में लिखे गये ''प्रेमा'' का परिवर्थित संस्करण है । प्रेमचंद ने अपनी वर्णन-शक्ति, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और कथोपकथन की स्वाभाविकता का दर्शन इस उपन्यास में दिया है । इस उपन्यास में विधवाओं के पुनर्विवाह की समस्या की प्रधानता है । सुधारक प्रेमचंद ने विधवाओं के जीवन को नष्ट करनेवाली इस सामाजिक कुरीति की बुराई का झण्डापगेड़ किया है ।

3.4. कथानक

वकील अमृतराय और दाननाथ दोनों में अंतरंग मैत्री थी । अमृतराय विधुर थे और दाननाथ अविवाहित । एक दिन दोनों मित्र विधवा विवाह पर समाज-सुधारक पंडित अमरनाथ का व्याख्यान सुन रहे थे और व्याख्यान के अंत में उन्होंने उन विधुर-युवकों से हाथ उठाने को कहा जो विधावाओं से शादी कर अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए तैयार हैं । भरी सभा में केवल अमृतराय ने हाथ उठाकर 'विधवा' से शादी करने की प्रतिज्ञा की ।

लेकिन अमृतराय ने अपनी साली प्रेमा को प्यार करते थे और उसे हृदय से लगा रखा था । प्रेमा को भी उनसे अटूट प्रेम था । पर इस प्रतिज्ञा ने तो वह रास्ता बंद कर दिया । दाननाथ भी प्रेमा पर मुग्ध हो गये थे । अमृतराय को इस विषय की पूरी जानकारी थी । उन्हें अब दाननाथ के रास्ते से हटने का सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया । दाननाथ की खुशी का टिकाना न रहा । परंतु उनके मन में कुछ हिचकिचाहट रही ।

अमृतराय के ससुर बद्रीप्रसाद ने जब यह प्रतिज्ञा सुनी तो उनके क्रोध की सीमा न रही । संस्कारग्रस्त वे निश्चय कर चुके थे

कि ऐसे व्यक्ति के साथ प्रेमा का विवाह न करेंगे, जिनके विचारों में म्लेच्छता आ घुसी हो !! बद्रीप्रसाद की पत्नी ने भी पति के निश्चय का समर्थन किया । प्रेमा का हृदय पिता के इस निश्चय से रो उठा । वह तीन वर्षों से मन के अंतःस्थल में अमृतराय की मूर्ति की स्थापना कर उसे अपना प्रेमार्ध्य चढ़ाती आ रही थी, पर विवश थी । उसने अपने पिता की इच्छा के अनुसार एत्सर्ग करने का निश्चय कर लिया ।

पूर्णा, नामक लड़की प्रेमा की सहेली थी, शादी के पहले प्रेमा के पड़ोस में रहती थी, अक्सर उसके साथ बैठकर घंटों तक बात करती । उसकी शादी होने के बाद ससुराल चली गई । एक होली के दिन पूर्णा के पति वसंत कुमार ने भंग पीकर उसकी नशे में गंगा में नहाने गए । लेकिन तैरते-तैरते वहीं डूब गये । पूर्णा अब विधवा हो गई ।

अब बद्रीप्रसाद ने पूर्णा की परिस्थिति और असहायता से करुणार्द्र हो कर उसके नाम से किसी अच्छे बैंक में 4000 रु. जमा करने का निश्चय किया । उसने अपने पुत्र कमलाप्रसाद से यह बात भी कहीं । कमलाप्रसाद कंजूस तथा निष्ठाहीन था और सिद्धांत का पक्का नहीं था । उसे अपनी पत्नी सुमित्रा से प्रेम नहीं था । अमृतराय की प्रतिज्ञा की बात सुनकर उनका भी मज़ाक उड़ाने लगा था । अब उसके पिता पूर्णा के नाम से 4000 रु. बैंक में जमा करते देखकर अपने पिता पर बड़ा गुस्सा आया । उसने पूर्णा को मायके जाने की सलाह देने का निश्चय किया । वह उसके घर भी गया । पर पूर्णा की सरलता, निष्कलंकता और असहायकता ने उसका निश्चय बदल दिया । वह पूर्णा की ओर आकर्षित हो गया । तरह-तरह की बातें बनाकर उसे अपने घर ले भी आया ।

बद्रीप्रसाद ने दाननाथ के पास प्रेमा के विवाह का संदेश भेजा । दाननाथ ने तुरंत इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया । वे अमृतराय से सलाह लेना चाहते थे । वहाँ अमृतराय ने उन्हें

समझा-बुझाकर राजी किया । उन्होंने स्वयं स्वीकृति पत्र लिखा और दाननाथ के हस्ताक्षर लेकर उसे बद्रीप्रसाद को भेज दिया ।

प्रेमा का विवाह दाननाथ के साथ संपन्न किया गया । अब वकील अमृतराय ने एक वनिताश्रम खोलने का निश्चय किया । वे इस पवित्र कार्य के लिए चंदा जमा करने लगे । उधर पूर्णा के बद्रीप्रसाद के घर आने से कमलाप्रसाद और पत्नी सुमित्रा का वैमनस्य और भी बढ़ने लगा । कमलाप्रसाद तो दुर्गुणों की खान था । पर सभी की धारणा थी कि वह सदाचारी है !! वह पूर्णा पर मोहित हो गया । संभव है कि उसे सरल, दीन, और आश्रयहीन पाकर कमलाप्रसाद के हृदय में कुप्रवृत्तियों का उदय हुआ हो ! पूर्णा से ताे वह एक प्रकार से निश्चिंत था ही, पर सुमित्रा उसकी कार्य-सिद्धि में दीवार बनकर खड़ी थी और कभी भी पूर्णा को अकेला नहीं छोड़ती थी । कमलाप्रसाद ने यह देखकर सुमित्रा से कहा कि पूर्णा उसके साथ रहने के उपयुक्त नहीं है । पर उस दिन से पूर्णा के साथ सुमित्रा अधिक से अधिक रहने लगी ।

कपटी कमलाप्रसाद के मन में पूर्णा को पाने की व्याकुलता दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही थी । एक दिन वह बाज़ार से बंगाली मिठाई लाया और उसने सुमित्रा से कहा कि इसमें वह पूर्णा को भी भाग दे । पर सुमित्रा ने ऐसा नहीं किया । इसी प्रकार सुमित्रा के पति ने दो कीमती साड़ियाँ खारीदीं । जैसे उसने घर में प्रवेश किया तो देखा कि दोनों साथ में बैठी थीं । उसने सुमित्रा से एक साड़ी पूर्णा को देने के लिए कहा । पर इस बार भी सुमित्रा ने ऐसा नहीं किया । केवल यही नहीं, उसने कमलाप्रसाद को भला-बुरा भी कहा । बेचारी पूर्णा को सुमित्रा का यह व्यवहार पसंद नहीं आया ।

पूर्णा को ऐसा लगा कि पति-पत्नी दोनों अलग अलग कारणों से क्रोध के वश में हैं । वह अवसर की प्रतीक्षा करने लगी कि कमलाप्रसाद से बातचीत करके वह अपनी स्थिति स्पष्ट बता

दे । दस-बारह दिन के बाद आधी रात के समय पूर्णा ने सुमित्रा के कमरे के किवाड़ खुलने की आवाज़ सुनी । उसने देखा कि सुमित्रा सशंक दृष्टि से चारों ओर ताकती हुई पति के कमरे की तरफ़ जा रही है । पर कमलाप्रसाद की आवाज़ सुनकर वह उल्टे पैर लौट आयी और अपने कमरे में सो गयी । पूर्णा अपनी पति के साथ अत्यंत खुशी से थी । उसे अपने सुखी दांपत्य-जीवन की याद आने लगीं । अब पूर्णा कमलाप्रसाद को यह समझाने के लिए कमरे के भीतर घुस आयी थी कि भाभी अर्थात् कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा को बुखार आ गया है, अतः अंदर जाकर वह उसे देख आये !! पूर्णा ने उसे समझाने की भरपूर कोशिश की लेकिन कमलाप्रसाद ने पूर्णा के हाथ पकड़कर अंदर खींच लिया, और द्वार बंद कर दिया । पूर्णा उसके स्पर्श से काँप उठी । अतएव कमलाप्रसाद ने उसे छोड़ दिया । इसके बाद कमलाप्रसाद ने अनुनय विनय के पश्चात् प्रेम-निवेदन किया, पर पूर्ण ने उस प्रेम को मना कर दिया । उसके उपरांत बहुत कहने-सुनने पर वह कुर्सी पर बैठ गयी और उसे कमलाप्रसाद के बहुत अनुरोध करने पर उसके द्वारा दी गयी साड़ी पहनी । फिर वह अपने कमरे में चली गयी । कमलाप्रसाद उसकें मुख पर अभिव्यक्त भावपरिवर्तनों पर विचार करता रहा कि पहले रोष, फिर हास और अंत में विराग !!

इधर प्रेमा विवाहोपरांत अपने पतिदेव दाननाथ को प्रसन्न करने का जी-जान से प्रयत्न करने लगी । परंतु दाननाथ के हृदय में संदेह के भूत ने घर कर लिया था । उनका दृढ़ निश्चय था कि प्रेमा अब भी वकील अमृतराय से प्रेम करती है । इसी संदेह के कारण वे अमृतराय से द्वेष करने लगे । वे प्रेमा से अमृतराय की निंदा करने लगे । प्रेमा इससे खुश न थी । इससे दाननाथ की द्वेषाग्नि भी और बढ़ी लेकिन अमृतराय एक सच्चे समाज सुधारक थे । इसलिए दाननाथ कट्टर सनातनी हो गये । उन्होंने सनातन धर्म की कट्टरता का समर्थन करते हुए एक भाषण भी दिया । उन्होंने इस बात की भी चेष्टा की कि अमृतराय की वनिताश्रमवाली

योजना विफल हो जाय । अमृतराय, दाननाथ के भाषण के अगले दिन उनके पास गये भी । किन्तु वे उनके विरुद्ध हो चुके थे । उनके साथ बद्रीप्रसाद और कमलाप्रसाद भी उनके विरुद्ध हो गए थे । कमलाप्रसाद तो उनके पीछे हाथ धोकर पड़ा ही था ।

एक दिन अमृतराय एक व्याख्यान देनेवाले थे । कमलाप्रसाद गुंडों द्वारा सभा में उपद्रव कराना चाहता था । प्रेमा को भाई के इस कृत्य की सूचना पहले ही मिल गयी । प्रेमा भी सभा भवन के अंदर गयी । जब सभा में उपद्रव आरंभ हुआ, तब वह सभा भवन पर जा पहुँची । उसने अमृतराय के पक्ष में जोरदार भाषण दिया । प्रेमा के भाषण और सच्चाई जानने के बाद लोगों का मन फिर से अमृतराय की ओर झुका, और जब प्रेमा ने वनिताश्रम के लिए चंदे की अपील की, तो गुंडों ने भी बहुत खुशी-खुशी आश्रम के लिए दान दिया । अमृतराय ने जब यह देखा कि प्रेमा ने स्वतः अमृतराय का पक्ष ले लिया है तथा अपने को एक ऐसी अजीब परिस्थिति में डाल लिया तो उन्हें इस बात का पश्चात्ताप हुआ कि वे भाषण देने ही क्यों आये है !!

इधर कमलाप्रसाद और सुमित्रा के बीच की खाई गहरी होती ही गयी । एक दिन पूर्णा की उपस्थिति में ही दंपति में झगड़ा हो गया । झगड़े के बाद कमलाप्रसाद बाहर जाने के पश्चात् पूर्णा ने सुमित्रा को समझाने की प्रयत्न भी किया । किंतु सुमित्रा उससे भी उलझ बैठी, और उसने पूर्णा को जली-कटी सुना दी । विवश होकर पूर्णा ने उस घर को छोड़ने का निश्चय किया । अपने निश्चय के अनुसार वह रात को कमलाप्रसाद के यहाँ बिदा माँगने गयी । पर कमलाप्रसाद अव्वल दर्जे का कपटी और एक निर्दयी, निर्लज, बेइमान अंत में पूर्णा से कहता है "जाने से पहले मुझे थोड़ा सुख देती जाओ ..... !!

कमलाप्रसाद की इस बात पर पूर्णा तो तिरस्कार का भाव प्रदर्शित किया । निर्लज कमलाप्रसाद ने तभी पूर्णा को अपनी ओर

खींच लिया और कमरे का द्वार बंद कर दिया । तदनंतर वह पूर्णा के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करने लगा । बाद में वह पूर्णा से कहता है कि अगर तुम इनकार करेगी तो मैं आत्महत्या कर लूँगा । उसने पूर्णा के इनकार करने पर आत्महत्या की धमकी दी । उसने उसे बड़े-बड़े प्रलोभन दिये । पर पूर्णा टस से मस न हुयी तथा उसने कमलाप्रसाद को ठुकरा दिया और कमलाप्रसाद से और भी तिरस्कार करने लगी ।

इसके पश्चात् एक दिन सुमित्रा ने पूर्णा से कह दिया कि उस दिन रात को मैंने सब देख लिया । बाद में पश्चाताप भी हुआ, अंत में उसने पूर्णा से यह भी कहा कि वह कमलाप्रसाद से विवाह कर ले !! इस पर पूर्णा रोने लगी तथा उसने सुमित्रा से क्षमा की याचना की ।

इसी समय अचानक कमलाप्रसाद हाथ में एक पत्र लेकर आया, और उसने कहा कि पूर्णा को प्रेमा ने बुलाया है, फिर आग्रहपूर्वाक उसे तांगे में बिठाया । स्वयं कमलाप्रसाद तांगा चलाने लगा । वह उसे अपरिचित मार्गों से नगर के बाहर बगीचे के एक बंगले में ले गया । यहाँ कमलाप्रसाद दुष्टता न कर सका क्योंकि पूर्णा का नारी तेज जागृत हो उठा । कोई दूसरा चारा न देखकर पूर्णा ने कुर्सी उठायी और कमलाप्रसाद पर उसीसे प्रहार किया । कमलाप्रसाद ने इसकी कल्पना तक न की थी । इस अप्रत्याशित प्रहार से वह आहत होकर मूर्च्छित हो गया । पूर्णा यह देखकर वहाँ से निकल कर गंगा में डूबने को चली । उसने एक वृद्ध से मार्ग पूछा । उस वृद्ध ने सारी जानकारी हासिल करके उसे अमृतराय के वनिताश्रम में भेज दिया ।

इतने में कमलाप्रसाद के दुराचरण का समाचार विद्युत की भाँति सारे शहर में फैल गया था । लाखों प्रयत्न करने पर कोई भी कमलाप्रसाद की बातों में न आये । कमलाप्रसाद और दाननाथ के बीच गहरी दोस्ती थी । अतएव वे भी लज्जा से गड़ गये । जनता दाननाथ से अत्यधिक क्रोधित हो गयी और उनके कालेज

के विद्यार्थी तक उन्हें शर्मिंदा करने लगे । विवश होकर उन्होंने तीन महीने की छुट्टी ले ली । वे दिन ब दिन इस निन्दा के कारण लगे ।

उधर कमलाप्रसाद अपने किये की सजा पाकर अंत में राह पर आ गये । सुमित्रा और कमलाप्रसाद में फिर से दांपत्य प्रेम बढ़ गया । बद्रीप्रसाद ने दोनों को गाँव भेजने का निश्चय किया ।

अमृतराय ने एक लेख प्रकाशित कर स्थिति को स्पष्ट किया और जनता की दृष्टि में दाननाथ को ऊँचा उठा दिया । अंत में अमृतराय और दाननाथ में संधि हो गयी ।

एक दिन अमृतराय ने दाननाथ को वनिताश्रम की सैर करायी । दानानाथ, वकील अमृतराय से उस प्रतिज्ञा की याद दिलाते है और आग्रह करते है कि किसी विधवा के साथ शादी कर घर बसाने की बात कहते है, उसी दिन वकील अमृतराय दाननाथ के आग्रह पर कहते हैं कि मैंने मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण किया है - **मैं एक विधवा के साथ विवाह नहीं किया बल्कि एक वतिताश्रम के साथ !!**

3.5. कथानक की आलोचना

प्रतिज्ञा एक सामाजिक उपन्यास है । मध्यम वर्ग के प्रेम को लेकर लिखा गया है । यह त्रिभुजमूलक प्रेम कहानी है जिसके एक बिन्दु पर प्रेमा और बाकी दो बिन्दुओं पर अमृतराय तथा दाननाथ हैं ।

प्रेमा से अमृतराय तथा दाननाथ दोनों प्रेम करते हैं और इसी से पुस्तक की बहुत सारी समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं । कथानक में एक अप्रत्याशित जटिलता यह है कि प्रेमा तो अमृतराय से प्रेम करती है पर अमृतराय ताव में आकर यह प्रतिज्ञा कर डालते हैं कि वे विधवा के अतिरिक्त और किसी से विवाह नहीं करेंगे । इससे दाननाथ के लिए मार्ग प्रशस्त हो जाता है और

घटना चक्र के कारण उसीसे उसकी शादी हो जाती है । इससे भी अधिक जटिलता इस कारण से आती है कि दाननाथ प्रेमा से विवाह कर लेने पर भी यह जानते हैं कि प्रेमा उसे नहीं बल्कि अमृतराय को चाहती हैं । **प्रतिज्ञा** में समाज सुधारक प्रेमचंद ने विधवाओं के जीवन को नष्ट करनेवाली सामाजिक कुरीति का झण्डापोड़ किया है । अमृतराय जो स्वयं एक सक्रिय समाज सुधारक है, एक लड़की से सगाई होने पर, एक विधवा से शादी करने का निश्चय करते हैं । जैसे पहले स्पष्ट कर दिया गया है यह तो उसकी साली प्रेमा ही है । उन्होंने एक सार्वजनिक सभा में प्रतिज्ञा की है कि वे विधवा से ही शादी करेंगे । इसी बीच उपन्यासकार प्रेमचंद उनके लिए रंगमंच तैयार करते हैं । अब कथावस्तु के लिए एक विधवा की आवश्यकता पड़ी है । पूर्णा नामक एक पात्र इसके लिए प्रस्तुत की जाती है । हाल ही में उसके पति वसन्तकुमार नदी में डूब जाने के कारण मर जाता है । अमृतराय विधवाओं की स्थिति सुधारने में लगे रहते हैं । प्रेमा से दाननाथ विवाह कर लेते हैं । इधर प्रेमा अपने स्वामी की सेवा में लग जाती है । **अमृतराय इस तरह एक विधवा से विवाह करने की अपेक्षा विधवाओं की समस्याओं को सुलझने का व्रत लेकर ही अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करते हैं ।**

अमृतराय की प्रतिज्ञा की पूर्ति के आधार पर ही उपन्यासकार प्रेमचंद जी ने उपन्यास का शीर्षक ''प्रतिज्ञा'' रखा है । यही शीर्षक की सार्थकता भी है । शुरू में उपन्यास की नायिका ''प्रेमा'' के आधार पर उपन्यास का नामकरण ''प्रेमा'' किया गया था । परंतु बाद में समाज सुधारक प्रेमचंद ने ''प्रेमा'' की अपेक्षा ''प्रतिज्ञा'' को योग्य समझकर, उपन्यास का शीर्षक ''प्रतिज्ञा'' ही रखा । **जिस प्रकार महाभारत के प्रधान पात्र गांगेय देवव्रत की प्रतिज्ञा आज भी ''भीष्म प्रतिज्ञा'' के नाम से अभिहित की जाती है वैसे ही अमृतराय ने आज से अस्सी वर्ष पहले एक विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा कर ली । यही नहीं, अपने वैयक्तिक जीवन में इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने की अपेक्षा उन्होंने**

विधवाओं की समस्याओं को हमेशा हमेशा के लिए सुलझाने का व्रत लेकर ही अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की ।

समाज के संतप्त प्राणियों को आश्रय देना ही प्रेमचंद को अत्यंत प्रिय है । इस उपन्यास में विधवाओं के लिए वनिता आश्रम की स्थापना की गयी है । प्रेमचंद समाज-सुधारक के नाते अपने पाठकों में केवल सामाजिक चेतना उत्पन्न करके ही संतुष्ट नहीं होते, सामाजिक बुराइयों के लिए क्रियात्मक हल सुलझाने को भी उत्सुक रहते हैं । ''प्रतिज्ञा'' रक्त-मांस के पात्रोंवाले उपन्यास की अपेक्षा विधवाओं के. उद्धार की समस्या से अधिक संबंध रखता है । इस उपन्यास में घटनाओं का अधिक होना इस बात का सूचक है कि यह उनकी आरंभिक रचना है । पात्र और कथावस्तु दोनों ही सामाजिक ध्येय और सुधार-भावना से आश्रित हैं ।

3.6. कथोपकथन

घटनाओं को प्रगतिशील बनाना तथा पात्रों के शील स्वभाव पर पूरा-पूरा प्रकाश डालना ही कथोपकथन का मुख्य उद्देश्य होता है । इसके द्वारा वस्तु-विधान तथा शील-निरूपण की प्रणाली में सुगमता, सरसता तथा मनोरंजकता की अभिवृद्धि होती है ।

प्रस्तुत उपन्यास में कथोपकथन का मुख्य उद्देश्य पात्रों के चरित्र की मनोरंजक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या करना ही है । घटना को प्रगतिशील बनाने या उसके स्वरूप को बदल देने का काम पात्रों की मनोवृत्ति स्वयं कर लेती है । प्रतिज्ञा की आरंभिक घटना ही इसका जीता जागता उदाहरण है । समाज सुधारक पंडित अमरनाथ के व्याख्यान से प्रभावित होकर वकील विधुर अमृतराय विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा कर बैठते हैं । इस एक घटना से प्रतिज्ञा का संपूर्ण कथानक में अप्रत्याशित परिवर्तन आ जाता है ।

''**प्रतिज्ञा**'' उपन्यास के पात्रों का पारस्परिक वार्तालाप

अधिकतर नवीन घटना या स्थिति का सृजन कर लेता है । वार्तालाप के द्वारा हम पात्रों के अंतस्तल का पूर्ण पर्यवेक्षण कर सकते हैं, उनके भीतरी जगत् की भली-बुरी बातें जान सकते हैं । यह प्रेमचंद जी की कथा को ही चटकीला नहीं बनाता, इस बात का भी विश्वास दिलाता है कि इसका कौशलपूर्ण प्रयोग ही इनकी उपन्यास-कला का सबसे बड़ा सौंदर्य है ।

प्रेमा तथा पूर्णा के वार्तालाप से इस तथ्य का सुंदर उद्‌घाटन हो जाता है ।

प्रेमा : "मैं भी समझती हूँ कि जब तक आदमी स्वयं गृहस्थी की झंझट में न फंसकर कुछ सेवा करना चाहता है, तो उसके पाँव की बेड़ी न बनना चाहिए । मैं तुम से सत्य कहती हूँ पूर्णा मुझे इसका दुःख नहीं है । उनकी देखा-देखी मैं भी कुछ कर पाऊँ ।

"मैं किसी के शुभ संकल्प में विघ्न न डालूँगी । मैं यदि और कोई सहायता न कर सकती तो कम-से-कम उनके मार्ग का कण्टक न बनूँगी ।"

लाला बद्रीप्रसाद और कमलाप्रसाद के वार्तालाप की झाँकी इस प्रकार है -

बदरीप्रसाद : मेरे लिए 20, 30, 40 सब बराबर है । लेकिन मुझे अपनी जिंदगी की ही नहीं सोचनी है । अगर, आज मैं न रहूँ तो कमला कौडी फोड़कर न देगा ।

आज मैं कुछ कर जाऊँ, कल मेरी आँख बन्द होते ही तुम उलट-पुलट दो, तो व्यर्थ में और बदनामी हो ।

प्रस्तुत उपन्यास में पात्रों की बातचीत अभिनयात्मक है । उसमें स्वाभाविकता और उपयुक्तता की कमी नहीं है । इसका प्रयोग करते समय उपन्यासकार पात्रों के शील स्वभाव स्थिति तथा अवसर का पूरा ध्यान रखते हैं, उनसे वैसी ही बातचीत कराते हैं जो उनकी प्रकृति के प्रतिकूल न जाँचे और न स्थिति और अवसर के प्रतिकूल जान पड़े । उदाहरण के लिए -

कमलाप्रसाद : सबके सब मूर्ख हैं । अक्ल किसी को छू नहीं गयी ।

"बुड्ढे गाँधीजी को और कुछ न सूझी, तो स्वराज ही का डंका पीट चले । सभी ने बुद्धि बेच खाई हैं ।"

जिस प्रकृति के पात्रों को जिस ढंग से बातें करनी चाहिए प्रेमचंदजी उनके मुँह से उसी प्रकार के शब्द निकलवाते हैं । मक्कार की बातें मक्कारी से भरी होती हैं, जैसे कमलाप्रसाद पूर्णा से सुमित्रा के बारे में कहता है - "बस, उसकी सुन्दरता की तारीफ़ करती रहना । यह न समझना कि रम्भा या उर्वशी कहने से वह समझ जायेगी कि यह मुझे बना रही है । तुम चाहे जितना बढ़ाओ, वह उसे यथार्थ ही समझेगी । इसी मंत्र से मैं उसे नचाया करता हूँ । वही मंत्र तुझे बताये देता हूँ ।" सत्य-प्रिय की बातें सच्चाई से भरपूर रहती हैं । जैसे -

अमृतराय : "यह अब मैं खूब समझ रहा हूँ भाई, लेकिन मेरा मन कह रहा है कि मुझे उससे विवाह करने का अधिकार नहीं है । पण्डित अमरनाथ की बात मेरे दिल में बैठ गयी है ।"

"न्याय तो यही कहता है ।"

"लेकिन अकेला आदमी कुछ नहीं कर सकता - यह मैं न मानूँगा ।"

जो पात्र जिस प्रकार की भाषा में स्वाभाविक ढंग से बोल सकते हो, उससे उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग उपन्यासकार ने कराया है ।

इस उपन्यास के पात्रों की बातचीत में रस-संचार करने की शक्ति भरी हुई है । प्रसंगानुकूल होने के कारण वे उखड़ी हुई और निर्जीव नहीं होती है । अपनी सजीवता के बल पर वे पाठकों के मन में जाकर बस ही नहीं जाती, उसे रस से भर भी देती हैं । दो सखियों की बातचीत सुनिये -

पूर्णा ने उदासीन भाव से कहा - तुम्हारी माया मेरी समझ में नहीं आती । बहन, क्षमा करना । मैं यह कभी न मानूँगी कि तुम्हें इससे दुःख न होग ।

प्रेमा : तो फिर उन्हें भी होगा ।

पूर्णा : पुरुषों का हृदय कठोर होता है ।

प्रेमा : तो मैं भी अपना हृदय कठोर बना लूँगी ।

पूर्णा : अच्छा, बना लेना, लो, अब न कहूँगी । लाओ बाजा, तुम्हें एक गीत सुनाऊँ ।

इन शब्दों से प्रेमा के अंतस्तल की गंभीर वेदना फूट पड़ती है और उसका प्रभाव पाठकों के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता । वहाँ करुणा और सहानुभूति की रसधारा आप से आप बहने लगती है ।

इस उपन्यास के कथोपकथन की सबसे बड़ी बात यह है कि वह जिस भाव या रस से संबंध रखता है उसका संचार वह पात्रों के हृदय में भी करता चलता है, और पाठकों के हृदय में भी । व्यंग्यपूर्ण बातें सुनकर हम पड़क उठते हैं, विनोद की बातों से हमें गुदगुदी लगती है । प्रेम, करुणा, त्याग आदि के भावों की अभिव्यक्ति हममें कोमल और करुण भावनाओं की सुष्टि करती है और घृणा, द्वेष, दम्भ, स्वार्थ आदि के भावों की अभिव्यक्ति बुरी भावनाओं की ओर से हमारा मन दूर हटा देती है । सच तो यह है कि कथोपकथन ही इस उपन्यास के प्राण है ।

3.7. बोध प्रश्न

1. उपन्यास तात्वों के आधार पर ''प्रतिज्ञा'' की विवेचन कीजिए ।
2. 'प्रतिज्ञा' उपन्यास का सार अपने शब्दों में लिखिए ।

NOTES

इकाई चार : 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में चित्रित प्रमुख पुरुष और स्त्री पात्र तथा आलोचना

इकाई की रूपरेखा

4.0. उद्देश्य

4.1. प्रस्तावना

4.2. 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में चित्रित प्रमुख पुरुष तथा स्त्री पात्र

- 4.2.1. अमृतराय
- 4.2.2. दाननाथ
- 4.2.3. बदरी प्रसाद
- 4.2.4. कमलाप्रसाद

4.3. 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में चित्रित प्रमुख स्त्री पात्र

- 4.3.1. पूर्णा
- 4.3.2. प्रेमा
- 4.3.3. सुमित्रा

4.4. देशकाल तथा वातावरण

4.5. भाषा-शैली

4.6. 'प्रतिज्ञा' में चित्रित समस्याएँ

4.7. बोध प्रश्न

4.0. उद्देश्य

पिछले इकाई में आपने उपन्यास सम्राट प्रेमचंद विरचित 'प्रतिज्ञा' की कथासार, कथोपकथन आदि के बारे में अध्ययन किया और जानकारी भी प्राप्त कर लीं ।

4.1. प्रस्तावना

इस इकाई में आप 'प्रतिज्ञा' उपन्यास के प्रमुख पुरुष तथा स्त्री पात्रों के बारे में सविस्तार रूप से जानकारी प्राप्त करेंगे तथा 'प्रतिज्ञा' उपन्यास की विवेचना भी करेंगे ।

4.2. प्रतिज्ञा उपन्यास में चित्रित प्रमुख पुरुष तथा स्त्री पात्र

साधारणतः यह देखा जाता है कि उपन्यास वस्तु-प्रधान भी होते हैं और पात्र-प्रधान भी । बहुधा ऐसा देखा जाता है कि जिस उपन्यास में वस्तु-विधान पर अधिक ध्यान दिया जाता है उसमें चरित्र-चित्रण की सुन्दरता नहीं आ पाती, और जिसमें चरित्र चित्रण को ही प्रधानता दी जाती है वह वस्तु-विन्यास की पुष्ट प्रणाली के अभाव में पड़कर अपना सारा महत्व और आकर्षण खो बैठता है । परंतु हमारे उपन्यासकार प्रेमचंद ''वस्तु'' और ''पात्र'' के इस पारस्परिक विरोध से सदैव सतर्क रहते हैं । प्रस्तुत उपन्यास में इन दोनों ही तत्वों का उपयुक्त संमिश्रण देखने को मिलता है, दोनों ही को एक दूसरे पर आश्रित रखकर ये उन्हें अपने-अपने काम में लगाये रहते हैं, आपस में लड़ने भिड़ने का अवसर ही नहीं देते । घटना-चक्र में पड़कर ही इनके पात्रों का चरित्र प्रस्फुटित होता है और पात्रों के चरित्र से ही घटना की सृष्टि भी होती है । अमृतराय स्थिति की विवशता से ही प्रतिज्ञा करते हैं । अपनी परिस्थितियों का विधाता वे स्वयं हैं, और उन्हीं परिस्थितियों द्वारा वे अच्छी तरह जाने-पहचाने भी जाते हैं ।

प्रेमचंदजी ने इस उपन्यास में नाट्य-तत्वों से भी काम लिया है । इनकी शील निरूपण की प्रणाली केवल विश्लेषणात्मक ही

नहीं, अभिनयात्मक भी है । पात्रों की भावनाओं एवं मनोवृत्तियों की व्याख्या ये स्वयं भी करते हैं और उन्हें भी इस बात का अवसर देते चलते हैं कि वे अपने कथन और कार्यों से या औरों की आलोचनात्मक सम्मति के द्वारा अपने शील-स्वभाव का परिचय प्रदान करें । प्रेमचंद अपनी ओर से भी कहते हैं - अमृतराय सिद्धांतवादी और बड़े ही संयमशील थे । कोई काम नियम विरुद्ध न करते । पात्र के संबंध में उपन्यासकार की तथा और पात्रों की जो धारणा है, उसके सर्वथा सत्य होने का समर्थन करनेवाली स्वयं उसकी करनी भी है ।

अपनी ओर से उपन्यास के पात्रों के शील-स्वभाव के संबंध में उपन्यासकार उतना ही कहते हैं जितना अवसर के नाते आवश्यक प्रतीत होता है । बीच-बीच में संकेत भर देते चलते हैं - विवरणात्मक अभिमत प्रकट करने की रसहीन शैली का आश्रय नहीं लेते हैं । पात्र स्वयं ही अपने मन, वचन और कर्म से अपने चरित्र का विश्लेषण करते चलते हैं और उपन्यास पात्रों को भी उनके संबंध में टीका-टिप्पणी करने का अवसर देते रहते हैं ।

इस उपन्यास के पात्र सजीव भी हैं तथा स्वाभाविक भी । उन्हें हम जानते-पहचानते हैं, उनमे साथ हिल-मिलकर जी खोलकर बातें कर सकते हैं, क्योंकि वे हमारे ही बीच के हैं । जो ऊँचे आदर्शों के उपासक हैं, वे भी मनुष्य हैं, जो कुत्सित भावनाओं एवं नीच वृत्तियों द्वारा अपने स्वार्थ की परितुष्टि करनेवाले हैं वे भी मनुष्य ही हैं । ठीक वैसे ही मनुष्य जैसे हम और आप ।

पात्रों के विषय में प्रेमचन्द एक ही समय सब कुछ नहीं कह डालते, घटना-चक्र की गति के अनुसार, धीरे-धीरे उनके चरित्र के विभिन्न अंगों का विश्लेषण करते चलते हैं । किसके चरित्र का कौन-सा अंग दुर्बल है, किसकी कैसी मनोवृत्ति है, इसका परिचय प्रेमचंद बड़े मार्मिक और मनोरंजक ढंग से देते हैं । स्त्रियाँ प्रेम करना भी जानती हैं और उसे छिपाना भी । प्रेमचंद जी बराबर इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक सत्य का आश्रय ग्रहण किये चलते हैं ।

मनस्तत्व की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करना इनकी चरित्र-चित्रण कला का एक मुख्य काम होता है ।

किससे, कब, किस तरह कौन सी बातें करने से क्या असर पड़ेगा, किस स्थिति में किसके मन की अवस्था कैसी रहती है, आदि बातों की मनोवैज्ञानिक जानकारी का अभाव इनके पात्रों में नहीं रहता है ।

4.2.1. अमृतराय

''प्रतिज्ञा'' उपन्यास का सबसे प्रधान पात्र है अमृतराय । वे पेशे से वकील थे । उनके स्वभाव का परिचय स्वयं उपन्यासकार यों करते हैं - अमृतराय सिद्धांतवादी आदमी थे । बड़े ही संयमशील । कोई काम नियम विरुद्ध न करते । जीवन का सद्व्यय कैसे हो, इसका सदैव उन्हें ध्यान रहता था । धुन के पक्के आदमी थे । एक बार कोई निश्चय करके उसे पूरा किये बिना न छोड़ते थे । वकील थे पर इस पेशे से उन्हें प्रेम न था । मुवक्किलों की बातें सुनने की अपेक्षा विद्वानों की मूक वाणी सुनने में उन्हें कहीं अधिक आनंद आता था । बनाये हुये मुकदमें भूलकर भी न लेते थे । लेकिन जिस मुकदमे को ले लेते, उसके लिए जान लड़ा देते थे । स्वभाव के दयालु थे, व्यसन कोई था नहीं । धन-संचय की इच्छा भी न थी इसलिए बहुत थोड़े मेहनताने में राज़ी हो जाते थे । यही कारण था कि उन्हें मुकदमें में हार बहुत कम होती थी । उनकी पहली शादी ऐसे वक्त में हुई थी जब वह कालेज में पढ़ते थे । एक पुत्र भी हुआ था, लेकिन पत्नी और पुत्र दोनों प्रसव काल में ही संसार से प्रस्थान कर गये । अमृतराय को बहन से बहुत प्रेम था । उन्होंने निश्चय किया, अब कभी विवाह न करूँगा । लेकिन जब बहन का विवाह हो गया और माता-पिता की एक सप्ताह के अंदर हैजे से मृत्यु हो गई, तो अकेला घर दुखदायी होने लगा । दो साल तक देशाटन करते रहे । लौटे तो होली के दिन उनके ससुर ने उन्हें भोजन करने को बुलाया । वह अमृतराय

के शील स्वभाव पर पहले ही से मुग्ध थे । उनकी छोटी लड़की प्रेमा सयानी हो गयी थी । उसके लिए अमृतराय से अच्छा वर उन्हें दूसरा न दिखायी दिया । प्रेमा से साक्षात् कराने के लिए ही उन्होंने अमृतराय को बुलाया था । दो साल पहले अमृतराय ने प्रेमा को देखा था । तब वह बन्द कली, अब एक विकसित कुसुम थी जिसकी छटा आँखों को लुभाती थी । हृदय में प्रेम का अंकुर जम गया । जब कभी जी ऊबता ससुराल चले जाते और दो घड़ी हँस-बोलकर चले जाते । आखिर एक दिन उसकी सास ने मतलब की बात कह दी । अमृतराय तो प्रेमा के रूप और गुण पर मोहित हो चुके थे । अंधे को जैसे आँखें मिल गयीं । बातचीत पक्की हो गयी । इसी सहालग में विवाह होने की तैयारियाँ थीं ।

उपन्यासकार प्रेमचंदजी के अमृतराय के बारे में इस विस्तुत विवरण से पाठक अपने आप उनकी महानता से परिचित हो जाते हैं । वास्तव में संपूर्ण उपन्यास में अमृतराय जैसे न्यायप्रिय, सत्यनिष्ठ, तत्वनिष्ठ व्यक्ति से मिलना असंभव है । अमृतराय के स्वभाव से उपन्यास के सभी पात्र परिचित हैं । अमृतराय की प्रशंसा उनके दुश्मन तक कर बैठते हैं । अमृतराय के प्रिय मित्र दाननाथ अपने किये पर पछताते हुए उनसे माफी माँगते हैं । अपनी पत्नी प्रेमा से दिल खोलकर कह उठते हैं - ''आज मुझे मालूम हुआ कि संसार में मेरा कोई सच्चा मित्र है तो यही है । मैंने इसके साथ बड़ा अन्याय किया । आज क्षमा मागूँगा ।'' ''नहीं प्रिये, अब जी नहीं मानता । उनके गले से लिपटकर रोने को जी चाहता है ।'' दाननाथ स्वयं अमृतराय से दिल खोलकर कहते हैं -

''हाँ तुम्हारे चरित्र पर मुझे कभी शंका नहीं हुई । रोज़ तरह-तरह की बातें सुनता था, पर एक क्षण के लिए भी मेरा मन विचलित नहीं हुआ ।''

''मेरा दिल तुम्हारी तरह से हमेशा साफ रहा ।''

''मैंने तुम्हारे ऊपर चन्दे के रूपये हज़म करने का इलज़ाम लगाया, हालंकि मैं काम करने को तैयार था कि यह सर्वथा मिथ्या है ।''

''मगर मैं चाहता हूँ पहले तुम मेरे दोनों कान पकड़कर खूब ज़ोर से खींचों और फिर दाह बार थप्पड़ ज़ोर ज़ोर से लगाओ ।''

कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा के कथन की ओर ज़रा ध्यान दीजिए - ''अमृतराय ऐसा आदमी ही नहीं है ।''

अमृतराय दोस्ती के नाम पर प्राणोत्सर्ग करने में भी कभी हिचकिचाते न थे । दाननाथ और अमृतराय में बड़ी गहरी दोस्ती थी । अमृतराय अपने मित्र दाननाथ को, उनके जीवन को सुखमय बनाने की लालसा से अपने जीवन की सबसे महँगी, अपनी एक अत्यंत प्यारी निधि प्रेमा को, बलपूर्वक भेंट करना चाहते हैं । यही मूलकारण है उनकी प्रतिज्ञा का । अपने दोस्त के सुख के लिए अपने सुख को स्वेच्छा से बलि चढ़ानेवाले अमृतराय जैसे व्यक्ति वास्तव में दुर्लभ हैं !!

प्रेमा के प्रति उनके मन में अटूट प्रेम था । यह उनकी आराध्य देवी थी । इस बात को अमृतराय ने कई बार प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट कर दिया है । उपन्यास के अंत में दाननाथ से यों कहते हैं - ''संपत्ति पाकर नीच हो जाना, स्वाभाविक है भाई, तुमने कोई अनोखी बात नहीं की । जब थोड़ा सा धन पाकर लोग अपने को भूल जाते हैं, तो तुम प्रेमा जैसी साक्षात् लक्ष्मी पाकर क्यों न फूल उठते ।'' इस तरह अमृतराय ने अपने मित्र के सुख के लिए, अपने स्वार्थ को तिलांजलि देकर भीषण प्रतिज्ञा कर ली । उन्हें केवल एक बहाना चाहिए था । जब सुवर्णावकाश प्राप्त हो गया तो उन्होंने उसे हाथ से न जाने दिया । हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि भावावेश में आकर बिना विचार किये उन्होंने प्रतिज्ञा नहीं की है । यह प्रतिज्ञा तो जान-बूझकर की गयी थी ।

अमृतराय अपने किये पर कभी पछताते नहीं है । अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए जी जान से जुड जाते हैं । यद्यपि इस पवित्र कार्य में उन्हें कई बाधाओं को सहन करना पड़ा फिर भी सफलता ने उन्हें वरण किया ।

अमृतराय ने नदी किनारे असी-संगम के निकट 50 एकड़ ज़मीन ले ली थी । अपना कैण्टोन्मेण्ट वाला बँगला बेच दिया था । यहीं उन्होंने ''वनिताश्रम'' की स्थापना की थी । इसमें 20 स्त्रियाँ थीं और 20 बालक । यहाँ की रोज़ाना बिक्री 100 रुपये के लगभग थी । सिद्धांतवादी अमृतराय ने वनिताश्रम की स्थापना के माध्यम से अपने सिद्धांत को पूर्ण करने में कामयाबी हासिल कर ली ।

इस उपन्यास की नायिका पूर्णा को भी अमृतराय अपने आश्रम में स्थान देकर असहाय, अनाथ, अबला का जीवन सुधार देते हैं । नारी के प्रति उनमें असीम श्रद्धा थी । नारी की महिमा से वे वाकिफ़ थे । पूर्णा के बारे में अमृतराय के ये शब्द स्त्रियों के प्रति उनकी भावना के लिए दर्पण है -

''एक शीहदे की शरारत ने उसका बाल भी बाँका न किया, उसकी इज्ज़त पहले जितनी थी, उतनी ही अब भी है ।''

ज़ब दाननाथ पूर्णा से शादी करने का प्रस्ताव अमृतराय के समक्ष रखते हैं कि उसे अपनी बहन कहकर इसे ठुकरा देते हैं ।

अमृतराय जैसे व्यक्ति मिलना विरल है । वह एक सच्चे समाज-सुधारक है । अगर वह स्वार्थी थे तो 'प्रेमा' से शादी करके आराम से रह सकते थे । लेकिन वह वास्तव में एक महान है। उन जैसे निस्वार्थ, संयमी, सेवारत आदमी के पूर्वजन्म के पुण्य से ही दर्शन होंगे ।

4.2.2. दाननाथ

दाननाथ कॉलेज के अध्यापक थे । उपन्यासकार प्रेमचंदजी ने उनका परिचय इस प्रकार दिया है - दाननाथ सरल स्वभाव के मनुष्य थे । जीवन के सरलतम मार्ग पर चलने में ही वे संतुष्ट थे । किसी सिद्धांत या आदर्श के लिए कष्ट सहना उन्होंने न सीखा था । वह एककॉलेज के अध्यापक थे । दस बजे कॉलेज

जाते एक बजे लौट आते । बाकी सारा दिन सैर सपाटे और हँसी-खेल में काट देते थे ।

अध्यापक होने के बावजूद वे किसी विषय को गंभीरता की मुट्टी में न पकड़ते थे । यही कारण है पण्डित अमरनाथ के व्याख्यान में उन्हें कोई रुचि नहीं थी । स्वयं उपन्यासकार लिखते हैं - दाननाथ का ध्यान व्याख्यान पर नहीं पण्डितजी की दाढ़ी पर था । उसके हिलने में उन्हें बड़ा आनन्द आया । बोलने का मरज़ था । ऐसा मनोरंजक दृश्य देखक चुप कैसे रहते । अमरनाथ का हाथ दबाकर कहा - "आपकी दाढ़ी कितनी सफाई से हिल रही है । जी चाहता है नोचकर रख लूँ । स्वयं प्रेमचंदजी ने दाननाथ के स्वभाव को इन बातों से स्पष्ट कर दिया है ।

दाननाथ, अमृतराय को अपना सच्चा मित्र मानते थे । उनंकी दोस्ती से अन्य लोग जलते थे । दाननाथ अपनी दोस्ती का नजायज फायादा उठाना नहीं चाहते थे । यही कारण है कि जब अमृतराय भीषण प्रतिज्ञा कर दाननाथ को प्रेमा से शादी करने की सलाह देते हैं तो वे उसे मानते नहीं है । बार-बार अमृतराय की निश्चय बदलने की सलाह देते हैं ।

दाननाथ प्रेमा पर आसक्त थे । परंतु वे जानते थे अमृतराय के रहते यह संभव नहीं है । फिर भी जब अमृतराय स्वयं दाननाथ से प्रेमा की शादी की बात करते हैं तो वे मौके को हाथ से जाने देने में ही जीवन की सार्थकता का अनुभव करते हैं । अमृतराय की प्रतिज्ञा से वे मर्माहत हो गये । कह उठते हैं - "तीन साल से वह तुम्हारे नाम पर बैठी हुई है । भले आदमी ऐसा रत्न तुम्हें संसार में और कहाँ मिलेगा ? अगर तुमने उससे विवाह न किया तो उसका जीवन नष्ट हो जायगा । तुम कर्तव्य के नाम पर जो चाहे करो, उसे अपने हृदय से नहीं निकाल सकते ।" अपने मित्र पर जग-हँसाई वे सहन नहीं कर सकते थे । कहते हैं - "बस, तुम्हारे न्याय-पथ पर चलने से ही तो सारे संसार का उद्धार हो जाएगा । तुम अकेले कुछ नहीं कर सकते । हाँ, नक्कू बन सकते

हो ।'' अपने मित्र को समझाने की कोशिश जारी रखते हुए कह उठते हैं - ''मैं तो समझता हूँ तुम पुराने आदर्शों को भ्रष्ट कर रहे हो । तुम नाम पर मरते हो । रमणियाँ नाम की इतनी भूखी नहीं होंगी । प्रेमा कितनी विचारशील है । लेकित्त यह कभी पसंद न करेगी कि उसका हृदय किसी व्रत के हाथों चूर-चूर किया जाय । उसका जीवन दुःखमय हो जायगा ।'' इन बातों के उत्तर में अमृतराय कह उठते हैं - ''नहीं'' दाननाथ, तुम्हारी बातों से मैं कभी नाराज़ नहीं हो सकता । तुम्हारी झिड़कियों में भी वह रस है, जो दूसरों की वाह-वाह में नहीं । मैं जानता हूँ तुमने इस समय जो कुछ भी कहा है, केवल स्नेह-भाव से कहा है । दिल में तुम खूब समझते हो कि मैं नाम का भूखा नहीं हूँ, कुछ ''फिर सोच लो, ऐसा न हो पीछे पछताना पड़ें ।''

वास्तव में दाननाथ अमृतराय के सच्चे मित्र और हितैषी थे । निस्वार्थ मैत्री की झलक ज़रा देखिए । जब अमृतराय दाननाथ की ओर से स्वीकृति पत्र लिखकर, उनके हस्ताक्षर लेकर बदरीप्रसाद को भेजने को कहते हैं तो दाननाथ असमंजस में पड़ जाते हैं । दुःखी होकर कह उठते हैं - ''देख लेना, मैं आज संखिया खा लेता हूँ कि नहीं । यह पत्र रक्खा ही रह जायगा । सबेरे ''राम नाम सत्त'' होगी ।

कितनी मनोहर मैत्री है, कितना दुर्लभ स्नेह, कैसा अपूर्व बन्धुत्व । यद्यपि ये अमृतराय पर झूठे इलज़ाम लगाकर उन्हें हतप्रभ करने की कोशिश करते हैं, अमृतराय ने अंत में जनता की दृष्टि में दाननाथ का स्थान ऊँचा करने के प्रयत्न में एक लेख प्रकाशित कर स्थिति को स्पष्ट किया । दाननाथ ने अपने किये पर पछताकर अमृतराय से क्षमा माँगी ।

मतलब इतना ही है कि दाननाथ और अमृतराय की दोस्ती अटूट थी । निस्संदेह दाननाथ के चरित्र में स्थिरता नहीं है । अमृतराय के समक्ष इनका व्यक्तित्व प्रकाशहीन अवश्य होता है । परंतु उनकी मैत्री सदैव सराहनीय ही है ।

शुरू में इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि दाननाथ प्रेमा पर मुग्ध हो गये थे । अमृतराय की प्रतिज्ञा के पश्चात् बदरीप्रसाद ने दाननाथ के पास प्रेमा के विवाह का संदेश भेजा । अंत में प्रेमा का विवाह दाननाथ के साथ संपन्न किया गया ।

दाननाथ शक्की स्वभाव के थें । यद्यपि प्रेमा पतिदेव की सेवा जी-जान से करती थी फिर भी दाननाथ के हृदय में संदेह के भूत ने घर कर लिया था । उनका दृढ़ निश्चय था कि प्रेमा अब भी अमृतराय से प्रेम करती है । इसी संदेह के कारण वे अमृतराय से द्वेष करने लगे । अमृतराय से अंत में वे स्वयं कह उठते हैं - "शादी होते ही मैं शक्की हो गया । प्रेमा मेरी उपेक्षा करती है । सच पूछों तो मैंने उसको जलाने और रुलाने के लिए ही तुम्हारी निन्दा शुरू की । मेरा दिल तुम्हारी तरफ़ से हमेशा साफ रहा ।"

दाननाथ अपनी औकात के वाकिफ़ थे । वे अच्छी तरह जानते थे कि वे प्रेमा के योग्य नहीं थे । इस बात को स्पष्ट करने में वे हिचकिचाते नहीं - "यही तो मैंने सबसे बड़ी भूल की । मैं प्रमा के योग्य न था ।"

ईर्ष्या के वशीभूत दाननाथ बुराइयों की जड़ कमलाप्रसाद की बातों में आ गये । उन्होंने इस बात की भी चेष्टा की कि अमृतराय की वनिताश्रम वाली योजना विफल हो जाय ।

अंत में हम कह सकते हैं कि दाननाथ जिस प्रकार खुद उपन्यासकार ने उनका परिचय कराया है - एक साधारण मनुष्य थे । किसी सिद्धांत या आदर्श के पीछे पागल नहीं थे । उनके चरित्र की सुन्दरता है उनकी निष्कपट मैत्री । किये पर पछताना साधारण बात तो नहीं है । पश्चात्ताप प्रकट कर वे महात्माओं की कोटि में अपना स्थान बना लेते हैं ।

4.2.3. बदरीप्रसाद

बदरीप्रसाद सुसंस्कृत, दयालु तथा सज्जन थे । रईस बदरी

प्रसाद की सज्जनता काफी प्रसिद्ध थी । प्रेमचंद जी लिखते हैं - उनसे ठगकर तो कोई एक पैसा भी नहीं ले सकता था, पर धर्म के विषय में वे बड़े उदार थे । स्वार्थियों से वे कोसों भागते थे; पर दीनों की सहायता करने में कभी न चूकते थे । देवकी उनकी पत्नी थी और प्रेमा पुत्री । वकील अमृतराय उनके दामाद थे । कमलाप्रसाद उनका पुत्र था । उनकी ज्येष्ठ पुत्री का देहान्त हो चुका था ।

बदरी प्रसाद और देवकी का दापंत्य जीवन दूसरों के लिए अनुकरणीय था । बदरी प्रसाद व्यवहारकुशल थे । काफी अनुभवी होने के नाते व्यक्तियों की सही पहचान उनकी विशिष्टता थी । यही कारण है कि देशाटन के बाद जब अमृतराय लौटे तो उन्हें भोजन करने को बुलाया । अमृतराय के शील स्वभाव से परिचित वे अपनी छोटी लड़की प्रेमा का विवाह अमृतराय से करना चाहते थे । प्रेमा से साक्षात करने के लिए ही उन्होंने अमृतराय को बुलाया था ।

बदरीप्रसाद संस्कारग्रस्त थे । अतएव जब उन्होंने वकील अमृतराय की विधवा से विवाह करने की प्रतिज्ञा सुनी तो उनके क्रोध की सीमा न रही । उनकी दृष्टि में अमृतराय ने बहुत बड़ी गलती की थी । वे निश्चय कर चुके थे कि ऐसे व्यक्ति के साथ प्रेमा का विवाह न करेंगे जिनके विचारों में म्लेच्छता आ घुसी हो ! देवकी ने भी पति के निश्चय का समर्थन किया । वे किसी दूसरे वर की तलाश में हैं । उनका कहना है - **''इस प्रतिज्ञा ने उन्हें हमारे समाज से बाहर कर दिया । अब हमारा उनसे कोई संपर्क नहीं रहा ।'' ''जो प्राणी विधवा-विवाह जैसे घृणित व्यवसाय में हाथ डालता है, उससे मेरा कोई संबंध नहीं हो सकता ।''**

बदरीप्रसाद का निश्चय अटल था । एक बार वे जो निश्चय कर बैठते उस पर अवश्य अमल करते । यही कारण है कि अमृतराय से फिर प्रेमा के विवाह का प्रस्ताव न रखा ।

अविवेकपूर्ण बर्ताव से वे अवश्य क्रोधित हो जाते थे । दाननाथ पर उन्हें इसलिए क्रोध था कि दाननाथ ने जिसके पास उन्होंने अपनी पुत्री प्रेमा के विवाह का संदेशा भेजा था स्वयं पत्र न लिखकर अमृतराय से क्यों लिखवाया । उन्होंने इसी क्रोध में दाननाथ को कुछ ऐसी कठोर बातें लिखनी चाहीं, जिसकी बाद दाननाथ उनकी सूरत देखना तक पसंद नहीं करते, प्रेमा से विवाह करने की बात तो दूर रही । देवकी ने उन्हें समझाने की कोशिश की ।

दयालु बदरीप्रसाद उनकी पुत्री प्रेमा की सहेली पूर्णा के विधवा हो जाने पर, निराश्रित युवती के जीवन को सहारा देना चाहते हैं । वे उसे अपने घर में स्थान देना चाहते हैं और सुविधा होने पर उसके नाम से बैंक में चार हज़ार रुपये जमा करने के पक्ष में भी हैं जिससे उनके मरने के बाद पूर्णा को कोई कष्ट न हो, उसी के सूदसे उसकी परवरिश होती रहे ।

जब षोडसी बड़ी धूमधाम से संपन्न की गई तो बदरीप्रसाद की उदारता स्पष्ट लक्षित हो गयी । पूर्णा अपने गहनों को जब बदरीप्रसाद जी के हाथ में रखना चाहती है तो वे कह उठे - ''इन गहनों को अपने पास रखो । कौन जाने किस वक्त इनकी ज़रूरत पड़े । जब तक मैं जीता हूँ, तुम्हें अपनी बेटी समझता रहूँगा । तुम्हें कोई तकलीफ़ न होगी ।'' ''पूर्णा को अपनी ही घर में रखे तो क्या हर्ज़ है ? अकेली औरत कैसे रहेगी ? ''

उन्हें अपने पुत्र कमलाप्रसाद से बड़ा प्यार था । परंतु वे उसके स्वभाव से खूब परिचित थे । कई बार उन्होंने उसके स्वभाव पर अपने विचार व्यक्त किये हैं - ''मेरे लिए 20,25,30 रुपये सब बराबर हैं । लेकिन मुझे अपनी ज़िन्दगी ही की तो नहीं सोचनी है । अगर आज मैं न रहूँ तो कमलाप्रसाद कोड़ी फोड़कर न देगा ।'' कमलाप्रसाद से कहते हैं - ''तुम्हारी यह बुरी आदत है कि तुम सबको स्वार्थी समझते हो । कोई भला आदमी दूसरों का एहसान सिर पर न लेना चाहता । मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है ।

जिसमें आत्म-सम्मान का कुछ भी अंश है, वह दूसरों से सहायता नहीं लेना चाहता ।''

वास्तव में बदरीप्रसाद का व्यक्तित्व महान गुणों से परिपूर्ण था । निराशा के अंधकार में जीवन-यापन करती हुई उनकी बहू अर्थात् कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा के ये शब्द बदरीप्रसाद की महानता के सूचक हैं -

''इस घर में एक ससुरजी हैं जिन्हें ईश्वर ने हृदय दिय है, और सब के सब पाषाण हैं ।''

4.2.4. कमलाप्रसाद

कमलाप्रसाद पहले दर्जे का मक्कार था । सुसंस्कृत, धनी, दयालु बदरीप्रसाद का पुत्र और प्रेमा का भाई था । उसकी पत्नी सुमित्रा के इन शब्दों में उपन्यासकार प्रेमचंद ने उसके स्वभाव का सही परिचय दिया है - ''मुझे तो यह कहना है कि इनके हृदय ही नहीं । हृदय की जगह स्वार्थ का रोड़ा रखा हुआ है । न पुस्तकों से प्रेम, न संगीत से प्रेम, न विनोद से प्रेम है, प्रेम है तो सिर्फ पैसे से । मुझे तो विश्वास नहीं कि इन्हें सिनेमा से आनन्द आता हो । वहाँ भी कोई न कोई स्वार्थ है । लेन-देन, सवा से ड्योढ़े, घाटे-नफे में इनके प्राण बसते हैं और मुझे इन बातों से घृणा है । कमरे में आते हैं तो अब देखी सवारी आ गयी । अब घण्टे दो घण्टे किफायत का उपदेश सुनना पड़ेगा । यों मैं धन को तुच्छ नहीं समझती । संचय करना अच्छी बात है, पर यह क्या कि आदमी धन का दास हो जाय । केवल इन्हें चिढ़ाने के लिए कुछ-न-कुछ फ़िजूल खर्चा किया करती हूँ । मज़ा तो यह है कि इन्हें अपने ही पैसे की अखर नहीं होती, मैं अपने पास से भी कुछ नहीं खर्चा कर सकती । पिताजी महीने में 40, 50 रुपये भेज देते हैं । मेरी जो इच्छा होती है करती हूँ । वह भी आपसे नहीं देखा जाता । इस पर भी कई बार तकरार हो चुकी है ।'' सुमित्रा के ये शब्द कमलाप्रसाद के चरित्र के प्रकाशक हैं ।

उसके पिता बदरीप्रसाद भी बेटे के गुणों से पूर्ण रूप से परिचित थे । अतएव वे पूर्णा के जीवन के लिए कोई न कोई स्थिर प्रबंध करना चाहते थे । उनका कहना है - "अगर आज मैं न रहूँ तो कमला कौड़ी फोड़कर नहीं देगा ।" "आज मैं कुछ कर जाऊँ, कल मेरी आँख बन्द होते ही तुम उलट-पुलट दो तो व्यर्थ में और बदनामी हो ।" "तुम्हारी यह बुरी आदत है कि तुम सबको स्वार्थी समझते हो ।"

कमलाप्रसाद की मक्कारी का परिचय तब मिलता है जब वह पूर्णा से सुमित्रा को वश करने का तरीका बताता है - "रह गई सुमित्रा, उसे ज़रा कुछ बुरा लगेगा । तुमसे कोई परदा नहीं, लेकिन उसकी बातों की परवा कौन कहता है । उसे खुश रखने का भी एक गुर तुम्हें बताये देता हूँ । कभी-कभी यह मंत्र फूँक दिया करना, वह फिर कभी तुम्हारी बुराई न करेगी । बस उसकी सुन्दरता की तारीफ़ करती रहना । यह न समझना कि रम्भा या उर्वशी कहने से वह समझ जायेगी कि यह मुझे बना रही है । तुम चाहे जितना बढ़ाओ, वह उसे यथार्थ ही समझेगी इसी मंत्र से मैं उसे नचाया करता हूँ । वही मंत्र तुम्हें बताये देता हूँ ।

कितना गिरा हुआ है आदमी है कमलाप्रसाद । पति स्वयं अपनी पत्नी की निन्दा एक पर स्त्री से करें, तथा उसी पत्नी को वश में करने का गुर बतायें । उपन्यासकार प्रेमचंदजी ने उसका यों परिचय दिया है - "गृह प्रबंध में अपने को आसानी समझते थे । यों तो बुद्धि विकास में अपने को अफलाई से रत्ती भर भी कम न समझते थे, पर गृह प्रबंध में उनकी सिद्धि सर्वमान्य थी । सिनेमा रोज़ देखते थे, पर क्या मज़ाल थी कि जेब से एक पैसा भी खर्च करें । मैनेजर से दोस्ती कर रखी थी । उल्टे उसके यहाँ कभी कभी दावत खा आते थे । पैसे का काम धेले में निकालते थे और बड़ी सुन्दरता से । बूढ़े लालाजी बेटे की इस कुत्सित मनोवृत्ति पर कभी-कभी खरी-खरी कह डालते थे ।"

कमलाप्रसाद पक्का कूटनीतिज्ञ था । जब बदरीप्रसाद ने 4000 रूपये पूर्णा के नाम पर जमा करने की बात कही तो लोभी कमलाप्रसाद ने सहानूभूति और चाटुकारिता की बातें करके उसे घर ले आना चाहा । उपन्यासकार प्रेमचंद कहते हैं - ''कमलाप्रसाद लंपट न था । सब की यही धारणा थी कि उसमें चाहे और कितने दुर्गुण हों, पर यह ऐब न था । किसी स्त्री पर ताक-झाँक रहते उसे किसीने न देखा था । फिर पूर्णा के रूप ने उसे कैसे मोहित कर लिया, यह रहस्य कौन समझ सकता है । कदाचित पूर्णा की सरलता, दीनता और आश्रयहीनता ने उसकी कुप्रवृत्ति को जगा दिया । उसकी कृपणता और कायरता ही उसके सदाचार का आधार थी । विलासिता महँगी वस्तु है । जेब के रुपये खर्चे करके भी किसी आफ़त में फँस जाने की यहाँ प्रतिक्षण सम्भावना हो, ऐसे काम में कमलाप्रसाद जैसा चतुर आदमी न पड़ सकता था । पूर्णा के विषय में उसे कोई भय न था । वह इतनी सरल थी कि उसे काबू में लाने के लिए किसी बड़ी साधना की ज़रूरत न थी और फिर यहाँ तो किसी का भय नहीं, न फँसने का भय, न पिट जाने की शंका । अपने घर लाकर उसने शंकाओं को निरस्त्र कर दिया था ।

ऐसी नीच प्रवृत्ति से परिपूर्ण कमलाप्रसाद बातें बनाने में कुशल था । सरल, धनिष्ठ प्रवृत्ति की पूर्णा को प्रेम, ईश्वर और धर्म के नाम पर अपनी ओर आकृष्ट कर उसने इनके कारगर न होने पर प्राण दे देने तक की धमकी दी ।'' ''जिस दिन से तुम्हारी मधुर छवि देखी है, उसी दिन से तुम्हारी उपासना कर रहा हूँ । पाषाण-प्रतिमाओं की उपासना पत्र-पुष्प से होती है, किंतु तुम्हारी उपासना मैं आँसुओं से करता हूँ । मैं झूठ नहीं कहता पूर्णा, अगर इस समय तुम्हारा संकेत पा जाऊँ तो अपने प्राणों को भी तुम्हारे चरणों पर अर्पण कर दूँ । ..... अवश्य ही पूर्वजन्म में तुमसे मेरा कोई संबंध रहा होगा । अगर तुम्हारी आखें मेरी ओर से यों ही फिरी रहीं, तो देख लेना कमला की लाश या तो इसी कमरे में तड़पती हुई पाओगी, या गंगा तट पर, यह मेरा निश्चय है ।'' यही

नहीं, वह पूर्णा को यह विश्वास दिलाना चाहता है यह ईश्वरीय प्रेरणा है कि वह उसकी ओर आकृष्ट हुआ है ।'' यदि उनकी प्रेरणा न होती, तो मुझे जैसे दुर्बल मनुष्य के हृदय में प्रेम का उदय क्यों होता, जिसने किसी स्त्री की ओर आँख उठाकर नहीं देखा । वह आज तुमसे प्रेम की भिक्षा क्यों माँगता होता । मुझे तो यह देव की स्पष्ट-प्रेरणा मालूम हो रही है ..... !''

कमलाप्रसाद भयंकर कपटी, मक्कार तथा चालाक था । कई बार उसने पूर्णा को वश में करने का प्रयत्न किया पर सफलता न मिली । अंत में एक दिन पूर्णा उससे कहती है - ''अब जाने दो बाबूजी, क्यों मेरा जीवन भ्रष्ट करना चाहते हो । तुम मर्द हो, तुम्हारे लिए अब कुछ माफ़ है । मैं औरत हूँ, मैं कहाँ जाऊँगी ? ..... और फिर बदनाम होकर कलंकित होकर जिए तो क्या जिए ।''

कपटी कमलाप्रसाद का कपट अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया । कमलाप्रसाद ने हाथ में एक पत्र लेकर पूर्णा से कहा - प्रेमा उसे बुलाया है । वह ताँगे को नगर के बाहर बगीचे के एक बंगले में ले गया । जैसे ही वह बलात्कार के लिए उद्यत हो उठा, पूर्णा ने कुर्सी उठाकर उस पर प्रहार किया । इस अप्रत्याशित प्रहार से वह आहत होकर मूर्च्छित हो गया ।

इस घटना के बाद बदनाम कमलाप्रसाद ने घर में ही रहने का निश्चय किया । सुमित्रा के ये शब्द देखिए - ''अब ठीक हो गये । बदनामी हुई तो क्या, पर ठीक रास्ते पर आ गये । अब सैर सपाटा सब बंद है । घर से निकलते ही नहीं । अब तो जो कुछ हूँ, मैं हूँ, मैं ही प्राणेश्वरी हूँ, मैं ही जीवन-सुधा हूँ, मैं ही हृदय की रानी हूँ । पहले यह इच्छा होती थी कि यह मेरे पास बैठे रहे । अब यह इच्छा होती है कि कुछ देर के लिए यह आँखों से दूर हो जायँ । कम से कम यह भय तो नहीं है कि मेरी चीज़ और किसी को मिल रही है । आगे के लिए भी यह भय न रहेगा ।''

4.3. 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में चित्रित प्रमुख स्त्री पात्र

4.3.1. पूर्णा

प्रस्तुत उपन्यास की नायिका पूर्णा परम सुन्दरी थी । इस उपन्यास का ऐसा कोई पात्र नहीं जिसने उसकी सुन्दरता की प्रशंसा न की हो । सत्यनिष्ठ सिद्धांत प्रेमी अमृतराय के ये शब्द देखिये - ''मुझे तो अच्छे-अच्छे घरों में ऐसी सुन्दरियाँ नजर नहीं आतीं ।'' दाननाथ का उत्तर है - ''उसके हसीन होने में कोई शक ही नहीं है ।'' कमलाप्रसाद की राय में पूर्णा अद्वितीय सुन्दरी है । ''जिस दिन से तुम्हारी मधुर छवि देखी है, उसी दिन से तुम्हारी उपासना कर रहा हूँ । खुद उपन्यासकार लिखते हैं - ''पूर्णा के रूप ने उसे मोहित कर लिया था ।'' पूर्णा बहुत सुन्दर बहुत ही सुशील थी ।

अनाथ युवती पूर्णा का विवाह दफ्तर के क्लर्क वसंतकुमार के साथ हो गया था । इन दोनों का दाम्पत्य जीवन अत्यंत सुखद था । वसंतकुमार पूर्णा को हृदय से चाहते थे और पूर्णा अपने पतिदेव की सेवा मन लगाकर करती थी । शायद इनका सुख विधि को सहन न हुआ । उसने वसंतकुमार को छीन लिया । पूर्णा के दुःख के दिनों का श्रीगणेश हो गया । सुमित्रा पूर्णा से कहती है - ''हम दोनों दुखिया हैं । तुम्हारी हृदय में सुखद स्मृतियाँ हैं, मेरे में वह भी नहीं ।''

पूर्णा और प्रेमा में गहरी दोस्ती थी । वे दोनों घण्टों बैठकर बातें किया करती थीं । जब प्रेमा के पिता बदरीप्रसाद, वसंतकुमार की मृत्यु के पश्चात् पूर्णा को समझाने का काम प्रेमा को सौंपना चाहते हैं तो प्रेम कह उठती है - ''नहीं दादा, मुझसे न बनेगा ।

वह और मैं दोनों ही अब तक बहनों की तरह रही हैं, मुझसे इस ढंग की बात अब न करते बनेगी ।''

लाला बदरीप्रसाद पूर्णा को पुत्री के समान प्यार करते थे । वह उनके गौरव की पात्र थी । पूर्णा उनकी पड़ोसिन ही नहीं, ब्राह्मणी थी । वसंतकुमार की मृत्यु के बाद पूर्णा के पास हलक दामों के गहनों के सिवा और कुछ भी नहीं था । जब उसने उन्हें बदरीप्रसाद को सौंपने की इच्छा प्रकट की तो लालाजी कह उठे - ''इन गहनों को अपने पास रखो । कौन जाने किस वक्त इनकी ज़रूरत पड़े । जब तब मैं जीता हूँ, तुम्हें अपनी बेटी समझता रहूँगा । तुम्हें कोई तकलीफ़ न होगी ।''

पूर्णा निस्संतान युवती थी । उसकी ससुराल या मायके में ऐसा एक भी संबंधी नहीं था जो उसका भरण-पोषण करें । लोभी कमलाप्रसाद सहानुभूति और चाटुकारिता की बातें करके उसे अपने घर ले आया । पूर्णा ने भी आपत्ति नहीं की क्योंकि ''आश्रयहीन अबला के लिए इस समय तिनके का सहारा ही बहुत था, तो वह नौका की अवहेलना कैसे करती ।''

असहाय, निराश्रित पूर्णा भविष्य के बारे में सोचने में असमर्थ थी । वह सरल तथा धर्मनिष्ठ तथा धर्मभीरु भी थी । कमलाप्रसाद ने उसकी निराश्रयता का बेजायज़ फायदा उठाना चाहा । जब पूर्णा उसकी बातों में नहीं आयी तो उसने प्राण दे देने की धमकी दी । ''अगर तुम्हारी आँखें मेरी ओर से यों ही फिरी रहीं, तो देख लेना कमला की लाश या तो इसी कमरे में तड़पती हुई पाओगी, या गंगा तट पर, मेरा यह निश्चय है ।''

पूर्णा सामान्य नारी थी । सुमित्रा ने उसके स्वभाव का अच्छा विश्लेषण किया था - ''तुम्हारा हृदय निष्कपट है । अगर तुम्हें कोई न छोड़ता तो तुम जीवन-पर्यन्त अपने व्रत पर स्थिर रहती । लेकिन, पानी में रहकर हलकोरों से बचे रहना तुम्हारी शक्ति के बाहर था । बेलंगर की नाव लहरों में स्थिर नहीं रह सकती । पड़े हुए धन को उठा लेने में किसको संकोच होता है ।''

पूर्णा को मालूम था कि कमलाप्रसाद का प्रेम मिथ्या है और

बार-बार उसने उसका विरोध किया भी । किंतु कमलाप्रसाद के प्राणत्याग की बार-बार की धमकी से उसका कोमल और निष्कपट हृदय विचलित हो उठा । उसे खूब मालूम था कि बाबू साहब ईश्वर को हमेशा क्यों बीच में घसीट लाते हैं और उनके प्रेम की क्या सीमा है । वह कमलाप्रसाद से कह उठी - ''बाबूजी, यह सब खोखली बात ही बात है । इसी मुहल्ले में दो एक ऐसी घटनाएँ देख चुकी हूँ । आपको न जाने मेरे इस रूप पर मोह हो गया है । अपने दुर्भाग्य के सिवा इसे और क्या कहूँ ? जब तक आपकी इच्छा होगी अपना मन बहलाइएगा, फिर बात भी न पूछिएगा, यह सब समझ रही हूँ । ईश्वर किसी को कुमार्ग की ओर नहीं ले जाते । इसे चाहे प्रेम कहिए, चाहे वैराग्य कहिए, लेकिन है कुमार्ग ही । मैं इसे धोखे में नहीं आने की । आज जो कुछ हो गया, अब भूलकर भी मेरी ओर आँख न उठाइएगा, नहीं तो मैं यहाँ न रहूँगी । यह कुछ न हो सका, तो डूब मरूँगी ।''

फिर भी पूर्णा कमलाप्रसाद के मायाजाल में उलझती ही गयी । क्योंकि धन से आदमी का जी भर जाए, प्रेम से तृप्ति नहीं होती । ऐसे काम बहुत कम हैं जो प्रेम के शब्द सुनकर फूल न उठें । कुशल कमलाप्रसाद ने पूर्णा के संस्कारों को, पाप और पुण्य में उसकी आस्था को, उसकी पति-भक्ति और संयम को भी तर्क से काट दिया । ''जब अबला के जीवन पर दैवी आघात हो जाता है, तो उससे आशा की जाती है कि वह सदैव उसके नाम को रोती रहे । यह कितना बड़ा अन्याय है । पुरुषों ने यह विधान केवल अपनी कामवासना को तृप्त करने के लिए किया है । स्त्रियों के लिए पतिव्रता धर्म की पंख लगा दी । पुनःसंस्कार होता तो इतनी अनाथ स्त्रियाँ उसके पंजे में कैसे फँसती ? बस, यही सारा रहस्य है । न्याय तो हम समझते, जब पुरुषों को भी यही निषेध होता ।''

कमलाप्रसाद के इन तर्कों से पूर्णा का हृदय विचलित हो उठा । फलतः उसके मन में पति-भक्ति, संयम और व्रत के विरुद्ध तरह तरह के विचार उठे । यह सोचने लगी - ''क्या वह मर

जाती, तो उसके पति पुनर्विवाह न करते ? अभी उनकी अवस्था ही क्या थी ? पच्चीस वर्ष की अवस्था में क्या वे विधुर जीवन का पालन करते । कदापि नहीं । स्वर्ग और नरक सब ढकोसला है । अब इससे दुःखदायी नरक और क्या होगा ? जब नरक ही में रहना है तो नरक ही सही । कमलाप्रसाद से जीवन के कुछ दिन तो आनंद से कटेगे, जीवन का कुछ सुख तो मिलेगा । जिससे प्रेम हो, वही अपना सब कुछ है । विवाह और संस्कार सब दिखावा है । विवाह होने पर भी तो पुरुष की जब इच्छा होती है, स्त्री को छोड़ देता है । बिना विवाह के भी तो स्त्री-पुरुष आजीवन प्रेम से रहते हैं ।'' पूर्णा के उपरोक्त तर्कों पर कमला प्रसाद के विचारों का स्पष्ट प्रभाव था और इसमें संदेह नहीं कि वे पूर्णा के लिए खतरनाक थे ।

पूर्णा के विचारों में स्थिरता का अभाव हमेशा खटकता है । वह कमलाप्रसाद से बोली - ''अब जाने दो बाबूजी, क्यों मेरा जीवन भ्रष्ट करना चाहते हो । ... और फिर बदनाम हो कर कलंकित होकर जिए तो क्या जिए ।

अंत में पूर्णा बलात्कार के लिए उद्यत कमलाप्रसाद को घायल करके वनिताश्रम पहुँच गयी । बहुत सारे लोग उससे विवाह करने के लिए तैयार थे किंतु पूर्णा ऐसी चुप थी कि उससे कुछ कहते नहीं बनता था । वनिताश्रम के संस्थापक अमृतराय के शब्दों में - ''उसकी विवाह करने की इच्छा हो, तो एक-से-एक धनी-मानी वर मिल सकते हैं । दो चार आदमी तो मुझी से कह चुके हैं ।''

पूर्णा ने अंत में भक्ति का सहारा ले लिया । वनिताश्रम में बाग के उस सिरे एक पुराना वृक्ष था । उसी के नीचे थोड़ी सी ज़मीन लीप-पोतकर पूर्णा ने एक घरौंदा-सा बनाया था । वह फूल-पत्ती से खूब सजा था । उसी घरौंदे में केले के पट्ठों से बने हुए सिंहासन पर कृष्ण की एक मूर्ति रखी हुई थी । पूर्णा के लिए वह अनंत जीवन का स्रोत, अखण्ड प्रेम का आगार, अपार भक्ति का भण्डार थी । उपन्यासकार पूर्णा के उस समय की स्थिति का

वर्णन करते हैं - पूर्णा की मुखाकृति अवर्णनीय आभा से प्रदीप्त थी । उसकी आँखें गहरी, शान्त विह्वलता से परिप्लावित हो रही थी । अमृतराय से बोली - मेरी पूजा का कोई समय नहीं है बाबूजी, जब हृदय में शूल उठता है, यहाँ चली आती हूँ । गोविन्द के चरणों में बैठकर रो लेती हूँ । कह नहीं सकती बाबू, यहाँ रोने से मुझे कितनी शांति मिलती है । मुझे ऐसा जान पड़ता है कि गोविन्द स्वयं मेरे आँसू पोंछते हैं । मुझे अपने चारों ओर अलौकिक सुगन्ध और प्रकाश का अनुभव होने लगत है । उनकी सहास विकसित मूर्ति देखते ही मेरे चित्त में आशा और आनंद की हिलोरें से उठने लगती हैं ।

4.3.2. प्रेमा

प्रेमा धनी बदरीप्रसाद की सुन्दर, सुशील तथा सुसंस्कृत पुत्री थी । उसकी माता देवकी उसके स्वभाव से खूब परिचित थी । प्रेमा को माता-पिता का प्यार पूर्णरूप से प्राप्त था । कमलाप्रसाद उसका भाई था तथा सुमित्रा उसकी भाभी ।

प्रेमा को अपने जीजा वकील अमृतराय से अटूट प्रेम था । तीन साल से उन्हें अपने हृदय मंदिर में बिठा लिया था । जब अमृतराय ने विधवा से विवाह करने की कठोर प्रतिज्ञा कर ली तो प्रेमा को वज्राघात हो गया । माता देवकी के ये शब्द इसके साक्षी है - "प्रेमा उन लड़कियों में नहीं है कि तुम उसका विवाह जिसके साथ चाहो कर दो । ज़रा जाकर उसकी दशा देखो तो मालूम हो जाय । जब से यह खबर मिली है, ऐसा मालूम होता है कि देह में प्राण ही नहीं । अकेले छत पर पड़ी हुई रो रही है ।"

परंतु प्रेमा अपने स्वार्थ के लिए अमृतराय को एक पवित्र कार्य से विमुख करना नहीं चाहती थी । वह अपनी असीम वेदना को कभी प्रकट करना नहीं चाहती थी । यही कारण है कि पूर्णा के पूछने पर भी वह बता देती है कि उसे इसका ज़रा भी दुःख नहीं हुआ है । वह अपना हृदय कठोर बना देने का निश्चय कर

लेती है । उसने पवित्र कार्य में बाधा बनना पसंद नहीं किया । अपनी माँ से कह उठीं - **नहीं अम्माजी, आपके पैरों पड़ती हूँ । आप उनसे कुछ न कहिये । उन्होंने हमारी बहनों के ही खातिर यह प्रतिज्ञा की है । इसलिए मैं इस शुभ कार्य में बाधक न बनूँगी । ऐसे सुशिक्षित पुरुष अगर यह काम न करेंगे, तो कौन करेगा ? जब तब ऐसे लोग साहस से काम न लेंगे, हमारी अभागिनी बहनों की रक्षा कौन करेगा ? मुझे इसका बिलकुल दुःख नहीं है अम्माजी मैं आपसे सच कहती हूँ । मैं भी इस काम में उनकी मदद करूँगी । जब तक आप लोगों का हाथ मेरे सिर पर है, मुझे किस बात की चिन्ता है । आप लोग मेरे लिए ज़रा भी चिन्ता न करें । मैं क्वारी रहकर बहुत सुखी रहूँगी ।''**

उपन्यासकार ने प्रेमा की मन स्थिति का परिचय यों कराया है - प्रेमा का हृदय काँप उठा । तीन साल अमृतराय को अपने हृदय-मन्दिर में स्थापित करके वह पूजा करती चली आती थी । उसक मूर्ति को उसके हृदय से कौन निकाल सकता था ? हृदय में उस प्रतिमा को बिठाये हुये, क्या वह किसी दूसरे पुरुष से विवाह कर सकती थी ? वह विवाह होगा या विवाह का स्वाँग । उस जीवन की कल्पना कितनी भयावह कितनी रोमांचकारी थी ।

प्रेमा ने स्वयं उनके जीवन से हट जाने का निश्चय किया । पूर्णा से उसने स्पष्ट कहा - ''मैं भी समझती हूँ कि जब एक आदमी स्वयं गृहस्थी की झंझट में न फँसकर कुछ सेवा करना चाहता है, तो उसके पाँव की बेड़ी न बनना चाहिए । मैं तुम से सत्य कहती हूँ, पूर्णा, मुझे इसका दुःख नहीं है । उनकी देखी-देखी में भी कुछ कर जाऊँगी ।''

''मैं किसी के शुभ संकल्प में विघ्न न डालूँगी । मैं यदि और कोई सहायता न कर सकती, तो कम-से-कम उनके मार्ग का कंटक न बनूँगी । ऐसा कोई दुःख नहीं है, जो आदमी सह न सके । वह जानते हैं कि मुझे इससे दुःख नहीं, हर्ष होगा, नहीं तो वह कभी यह इरादा न करते । मैं ऐसे सज्जन प्राणी का उत्साह

बढ़ाना अपना धर्म समझती हूँ । उसे गृहस्थी में नहीं फँसाना चाहती ।''

अमृतराय तथा दाननाथ दोनों प्रेमा को चाहते थे । दाननाथ के ये शब्द देखिए - तीन साल से वह तुम्हारे नाम पर बैठी हुई है । भले आदमी, ऐसा रत्न तुम्हारे संसार में और कहाँ मिलेगा ? अगर तुमने उससे विवाह न किया तो तुम्हारा जीवन नष्ट हो जायगा ।

प्रेमा विचारशील थी । इसीलिए उसने अमृतराय के मार्ग में कंटक बनना न चाहा । अमृतराय बोल पड़े - ''अगर वह उतनी ही सहृदय है, जितना मैं समझता हूँ तो मेरी प्रतिज्ञा पर उसे दुःख न होना चाहिए । मुझे विश्वास है कि उसे सुनकर हर्ष होगा, कम से कम मुझे ऐसी ही आशा है ।

प्रेमा और पूर्णा में गहरी दोस्ती थी । यही कारण है कि पूर्णा ने प्रेमा के विचारों को बदलने का प्रयत्न किया । पर उसे सफलता प्राप्त न हुई । बोली ''तुम्हारी माया मेरी समझ में नहीं आती, क्षमा करना । मैं यह कभी न मानूँगी कि तुम्हें इससे दुःख न होगा ।

अंत में प्रेमा का विवाह दाननाथ से हो गया । वह अपने पति को सुखी देखना चाहती थी । सच्चे अर्थ में एक पतिव्रता बन गयी थी । फिर भी हृदय में अमृतराय के प्रति श्रद्धा थी । एक अवसर पर, जब अमृतराय वनिताश्रम के चन्दा के लिए जलसा करनेवाले हैं, द्वेष के कारण दाननाथ गुण्डों द्वारा उपद्रव कराना चाहते हैं, प्रेमा चाहती है कि वह अमृतराय को अपने पति के दुराग्रह से परिचित करा दे, किंतु वह कुछ निश्चित नहीं कर पाती, और इसी उधेड़बुन में उत्सव का समय आ जाता है । उसकी कोमल भावनाएँ उसे अमृतराय के घर जाकर उन्हें रोकने को प्रेरित करने लगती हैं । उसे भय होता है कि दाननाथ को उसका यह कार्य बहुत बुरा लगेगा । किंतु वह इसकी चिंता छोड़ देती

है । वह सोचती है - वह किसी की लौंडी नहीं है, उसने किसी के हाथ अपनी धारणाएँ नहीं बेची हैं और वह चली जाती है ।

प्रेमा की इस हरकत से दाननाथ बहुत रुष्ट होते हैं, उसकी सूरत से नफरत करने लगते हैं, उसे बहुत दिनों तक क्षमा नहीं करते, और कठोर व्यंग्यपूर्ण बातें करने में ज़रा भी नहीं हिचकते । प्रेमा जी-जान से उनकी सेवा करती है, उनका मुँह जोहा करती हे, उन्हें प्रसन्न करने की चेष्टा किया करती है । परंतु दाननाथ को उसकी भाव-भंगिमा में भी बनावट मालूम होती है । वह एकांत में रोती है, पिछली घटना पर विचार करती है । उसे पति की सहानुभूति शून्यता पर दुःख होता है । "उस जलसे में जाना तो कोई अनुचित बात न थी । क्या कोई बात इसीलिए अनुचित हो जाती है कि अमृतराय का उससे हाथ है - इनमें इतनी सहानुभूति भी नहीं, सब कुछ जानकर भी अनजान बनते हैं ।"

विचारशील प्रेमा न्याय का पक्ष लेने से घबराती नहीं थी । उसमें एक अद्‌भुत तथा अटूट साहस था । वनिताश्रम के लिए चन्दे के अपील का उसका भाषण सुनने के बाद प्रेमा का व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाएगा - "यह सभा आज इसलिए की गई है कि आपसे इस नगर में एक ऐसा स्थान बनाने के लिए सहायता माँगी जाय, जहाँ हमारी अनाथ, आश्रयहीन बहनें अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करते हुए शांति से रह सकें । कौन ऐसा मुहल्ला है जहाँ ऐसी दस-पाँच बहनें नहीं हैं । उनके ऊपर जो बीतती हैं वह क्या आपनी आँखों से नहीं देखते हैं ? कम-से-कम अनुमान होकर ही सकते हैं । वे जिधर आँखें उठाती हैं, उधर ही उन्हें पिशाच खड़े दिखाई देते हैं जो उनकी दीनावस्था का अपनी कुवासनाओं को पूरा करने का साधन बना लेते हैं । हमारी लाखों बहनें इस भाँति केवल जीवन-निर्वाह के लिए पतित हो जाती हैं । क्या आपको उन पर दया नहीं आती ? मैं विश्वास से कह सकती हूँ कि अगर उन बहनों को रूखी रोटियाँ और मोटे कपड़ों का भी सहारा हो, तो वे अंत समय तक अपने सतीत्व की रक्षा करती रहें ।"

4.3.3. सुमित्रा

धनी बदरीप्रसाद के पुत्र कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा यद्यपि बहुत सुन्दर न थी फिर भी वह रूपहीन भी न थी । बनाव-श्रृंगार का तो उसे मरज़-सा हो गया था । उसका पति पूर्णा से ये ही बातें कहता है - **''उसे खुश रखने का भी तुम्हें एक गुर बताये देता हूँ । यह मन्त्र फूँक दिया करना कि वह भी तुम्हारी बुराई नहीं करेगी । बस उसकी सुन्दरता की तारीफ़ करती रहना । यह न समझना कि रम्भा या उर्वशी कहने से वह समझ जायेगी कि यह मुझे बना रही है । तुम चाहे जितना बढ़ाओ, वह उसे यथार्थ ही समझेगी । इसी मंत्र से मैं उसे नचाया करता हूँ । वही मंत्र तुम्हें बताये देता हूँ ।''**

पति की निष्ठुरता और उपेक्षा सुमित्रा को पीड़ित करती रहती । उसके हृदय में पति के प्रति **अविश्वास की भावना** इस प्रकार घर कर गई थी कि जब वह उससे प्रेम करता तो उस समय भी उसे सुख नहीं मिलता था । कमलाप्रसाद ने अपनी निष्ठुरता से उसके विश्वास और उसकी श्रद्धा का अपहरण कर लिया था । जीवन में उसका कोई संगी न था । उसकी सास देवकी से भी उसे प्यार न मिला था । देवकी को सुमित्रा की कोई बात न भाती थी । उसका हँसना-बोलना, चलना-फिरना, उठना-बैठना, पहनना-ओढ़ना सभी उन्हें फूहड़पन की चरमसीमा का अतिक्रमण करता हुआ जान पड़ता था और वह नित्य उसकी प्रचण्ड आलोचना करती रहती थी । परंतु सुमित्रा ठहरी बड़ी ढीठ । सुमित्रा उन्हें चिढ़ाती रहती जैसे आधा सिर खुला रखती, हर दिन चढ़े उठा करती थी या महरियों से हँसी-दिल्लगी किया करती थी ।

सुमित्रा का पूर्ण परिचय उसके इन शब्दों से मिलता है - ''बारह ही तो बजे हैं, इतनी ज़ल्द क्यों आयेंगे । न एक, न दो, न तीन । मेरा विवाह तो इस महल से हुआ है, लाल बदरीप्रसाद की

बहू हूँ, इससे बड़े सुख की लालसा कौन कर सकता है ? भगवान ने किसलिए मुझे जन्म दिया समझ में नहीं आता । इस घर में कोई मेरा अपना नहीं है बहन । मैं जबर्दस्ती पड़ी हुई हूँ, मेरे मरने जीने की किसी को कुछ परवा नहीं है । हम दोनों दुःखिया हैं । तुम्हारे हृदय में सुखद स्मृतियाँ हैं । मेरे में वह भी नहीं । मैंने सुख देखा ही नहीं और न देखने की आशा ही रखती हूँ ।

अगर मुझे कहीं आश्रय होता तो इस घर में एक क्षण भर नहीं रहती । सैकड़ों बार माता-पिता को लिख चुकी हूँ कि मुझे बुला लो, मैं आजीवन तुम्हारे चरणों में पड़ी रहूँगी, पर उन्होंने भी मेरी ओर से अपना हृदय कठोर कर लिया । जवाब में उपदेशों का एक पोथा रँगा हुआ आता है, जिसे मैं कभी नहीं पढ़ती । इस घर में एक ससुरजी हैं, जिन्हें ईश्वर ने हृदय दिया है, और सब-के-सब पाषाण हैं । मुझे तो यह रोना है कि इनके हृदय ही नहीं ।''

धन के पीछे पागल होना सुमित्रा को पसंद नहीं था । उसका कहना है - ''यों मैं धन को तुच्छ नहीं समझती । संचय करना अच्छी बात है, पर यह क्या कि आदमी धन का दास हो जाय ।''

पति की निष्ठुरता नित्य ही उसके हृदय में चुभा करती थी । इस निष्ठुरता का कारण क्या है, यह समस्या उससे हल न होती थी । पति के हृदय को पाने के लिए वह नित्य नया सिंगार करती थी और इस अभीष्ट के पूरे न होने से उसके हृदय में ज्वाला सी दहकती रहती थी । घी के छींटों से भभकना तो ज्वाला को स्वाभाविक ही था, वह पानी के छींटों से भी भटकती थी । कमलाप्रसाद जब उससे अपना प्यार जताता, तो उसके जी में आता, छाती में छुरी मार लूँ । घाव में यों ही क्या कम पीड़ा होती है कि क्या कोई ऊपर नमक छिड़के ।

अधिकार के बल पर शासन करनेवाले को वह सह नहीं सकती थी । यही कारण है कि वह अपने पति के प्रति श्रद्धाविहीन

और स्नेहहीन हो गयी थी । उसका कहना है - ''आखिर मैं क्यों इनकी घौंस सहूँ ? जो दस बातें प्यार की करें, उसकी एक घौंस भी सह ली जाती है । जिसकी तलवार सदा म्यान से बाहर रही हों उसकी कोई कहाँ तक सहे ?''

बदनाम होने के बाद कमलाप्रसाद के स्वभाव में आमूलपरिवर्तन आ गया था । सुमित्रा के ही शब्द सुनें - ''बदनामी हुई तो क्या, पर ठीक रास्ते पर आ गये । अब तो जो कुछ हूँ मैं हूँ । मैं ही प्राणेश्वरी हूँ, मैं ही जीवन-सुधा हूँ, मैं ही हृदय की रानी हूँ । रोज़ नई नई उपाधियाँ गढ़ी जाती हैं, नये नये नाम दिये जाते हैं, मेरा तो अब जी ऊब जाता है । पहले यह इच्छा रहती थी कि यह मेरे पास बैठे रहे । अब यह इच्छा होती है कि कुछ देर के लिए ये आँखां से दूर हो जायँ । जब प्रेम जताने लगते हैं तो झुँझला उठती हूँ । मगर फिर भी पहले से कहीं अच्छी हूँ । कम से कम यह भय तो नहीं है कि मेरी चीज़ और किसी को मिल रही है । आगे के लिए भी यह भय न रहेगा ।''

4.4. देशकाल तथा वातावरण

प्रस्तुत उपन्यास सामाजिक समस्याओं से संबंध रखनेवाला है । राष्ट्र की चलती हुई राजनीतिक समस्याएँ भी यहाँ चित्रित हैं । किंतु समाज या राष्ट्र के किसी एक ही अंग को पकड़कर यह नहीं चलता है । उसने भिन्न-भिन्न अंगों तथा स्वरूपों का विश्लेषण करते हुए प्रेमचंद जी ने देशकाल का मार्मिक चित्रण उपस्थित किया है । इस चित्रण में इतिहास की सच्चाई भी है तथा कला की सुन्दरता भी । हमारे घरेलू और सार्वजनिक जीवन के जितने भी क्षेत्र हैं, हमें अपने कार्यक्षेत्र में जिन परिस्थितियाँ एवं घटनाओं का सामना करना पड़ता है, उन सभी बातों पर उपन्यासकार ने पूरा पूरा प्रकाश डाला है ।

इस उपन्यास में हमारी सामाजिक स्थिति के जीते-जागते चित्र भरे पड़े हैं । इसके द्वारा अपने सब प्रकार के जीवन की

संपूर्णता, व्यापकता एवं वास्तविकता का संपूर्ण पता चल जाता है, हम अपने जीवन के एक एक स्वरूप से, उसके एक एक अंग से संपूर्ण परिचित हो जाते हैं । यह उपन्यास सामयिक है । प्रेमचंद जी बोलते हुए वर्तमान से हमारा साक्षात्कार कराते हैं । यह सामाजिक होते हुए भी सर्वकालीन है । उदाहरण के लिए - ''पूर्णा'' जैसी नारी हृदय की वेदना तो सदा जीवित रहेगी । इस तरह इस उपन्यास में देशकाल का प्रतिबिंब सुन्दर सहज बन पड़ है ।

4.5. भाषा - शैली

उपन्यासकार प्रेमचंद जी की भाषा में हिन्दी और उर्दू दोनों ही के शब्द मिले रहते हैं, इसलिए वह बहुत ही चलती हुई होती है । ''कलई तो काफी तौर पर खुल गई, अब उसे और खोलने की क्या ज़रूरत है ।'' ''कम-से-कम अपनी इज्ज़त बचाने के लिए इसकी बड़ी सख्त ज़रूरत है ।'' प्रेमचंदजी न तो भाषा को सजाने के लिए किसी कृत्रिमता से काम लेते हैं, न उसके प्रवाह पर किसी प्रकार का अस्वाभाविक नियंत्रण रखते हैं । लोग आपस में साधारणतः जिस ढंग से बातचीत करते हैं, वहीं ढंग इनके लिखने का है और वह ढंग ऐसा है जिसमें कहीं कहीं अंग्रेजी के भी शब्द आ मिलते हैं । ''अमृतराय स्पीच सुनने में तल्लीन थे ।'' आजकल के अंग्रेजी पढ़े लिखे लोग अंग्रेजी मिली हुई हिन्दी बोलते हैं, इसलिए दाननाथ के ''रही हुई स्पीच है'' कहने में भाषा की एक स्वाभाविकता है, एक प्रकार की अकृत्रिमता है । प्रेमचंदजी भाषा को गढ़ते नहीं है, वह तो आप ही आप इनकी कलम से निकलती चलती है ।

प्रेमचंद जी भाषा की स्वाभाविकता का आधार है, वस्तु, पात्र और देश-काल के साथ उसका अटूट मेल । ''प्रतिज्ञा'' की भाषा में ओज, माधुर्य और प्रसाद ये तीनों गुण पाये जाते हैं । जैसा पात्र उसकी वैसी ही भाषा । उपन्यास की भाषा में जो सरलता और स्वच्छन्दता होनी चाहिए, वही इनकी भाषा में रहती है ।

प्रेमचंद जी की भाषा-शैली की बड़ी विशेषता यह है कि उसमें सादगी भी रहती है और अलंकारों की शोभा भी, सीधे-सादे भावपूर्ण शब्दों को जोड़कर छोटे-छोटे चुभते हुए वाक्य बनाने में तो ये पूर्ण पटु हैं ही, इसके साथ ही, इनकी यह भी विशेषता है कि उन्हीं के भीतर अलंकारों का विधान भी बड़ी मार्मिकता से कर सकते हैं । इनके शब्दचित्रों में बड़ी सजीवता रहती है ।

सुंदर-सुंदर मुहावरों तथा अनुभूतिमूलक अमर उक्तियों के बाहुल्य ने इनकी भाषा-शैली को जो वैभव, जो सौंदर्य और जो गौरव प्रदान कर रखा है, वह इनके द्वारा प्रस्तुत किए हुए साहित्य के अमरत्व का सबसे बड़ा संरक्षक है । अनुभूति भरे अमर वाक्यों की थोड़ी सी उदाहरण देखिए - ''सच्चा प्रेम, संयोग में भी वियोग की मधुर वेदना का अनुभव करता है ।''

''पराश्रय से बड़ी विपत्ति दुर्भाग्य के कोष में नहीं है ।''

''मैले बतन के साथ पानी भी मैला हो जाता है । द्वेष से भरा हुआ हृदय पवित्र आमोद भी नहीं सह सकता ।''

भाषा और शैली का समन्वय इस उपन्यास में सर्वत्र पाया जाता है ।

4.6. ''प्रतिज्ञा'' में चित्रित समस्याएँ

आज हिन्दू-समाज में विधवा-समस्या अपने भयंकर रूप में उपस्थित है यों तो वर्तमान हिन्दू-समाज में समग्र नारी जीवन पुरुष वर्ग की तिरस्कार, दमन तथा उपेक्षा-भावना का शिकार है, लेकिन सबसे अधिक अत्याचार और शोषण की प्रतिमूर्ति एक मात्र विधवा ही है । विधवा का यह दयनीय जीवन विशेषकर मध्यवर्गीय परिवारों में बड़ा ही मर्मस्पर्शी है । किसी भी देश की उन्नति के लिये यह बात बड़े महत्व की है कि उसमें बसनेवाली प्रत्येक स्त्री पुरुष को एक से सामाजिक अधिकार प्राप्त हों, स्त्री और पुरुष के शारीरिक तथा मानसिक विकास की आवश्यकताएँ सहज में पूर्ण हो सकें । समाज व्यवस्था जब दूषित होती हैं, तब समाज-विरोधी

शक्तियाँ नैतिकता की थौथी आवाज़ लगाकर समाज के गतिशील चेतन एवं विकासशील तत्वों के मार्ग में रुकावट का काम अवश्य करती हैं, पर वे उन्हें पराभूत तो नहीं कर सकतीं । प्रत्येक प्रगतिशील लेखक का यह विश्वास समाज की इसी दुर्दमनीय शक्ति से पुष्ट होता है, और वह विकासोन्मुख तत्वों को समझने में तथा उन्हें सहायता देने में कोई कमी नहीं उठा रखता । प्रेमचंद को समाज के ऐसे तत्वों की सूक्ष्म पहचान थी ।

''प्रतिज्ञा' में विधवा समस्या प्रमुख है । ''पूर्णा'' के माध्यम से प्रेमचंद विधवा समस्या का उद्‌घाटन करते हैं । इस प्रमुख समस्या के साथ-साथ अनेक गौण समस्याओं का भी चित्रण यहाँ किया गया है । स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता इनमें प्रमुख है । इसमें संदेह नहीं कि विधवा-समस्या का प्रमुख कारण आर्थिक विषमता है, और यह आर्थिक विषमता वर्तमान समाज-व्यवस्था पर आश्रित है । प्रेमचंद ने इस बात का भी स्पष्टीकरण कर दिया है कि जब तक भारतीय जीवन के सामाजिक संगठन में आधारभूत परिवर्तन नहीं होते, ये समस्याएँ उचित ढंग से सुलझ नहीं सकतीं । जब तक नारी पर पुरुष की प्रभुता बनी रहेगी वह उसे अपने गर्हित स्वार्थ के लिए कभी भी मुक्त नहीं होने देगा । आवश्यकता सामाजिक-व्यवस्था के समूल परिवर्तन की है ।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने विधवा-समस्या को कटुता तथा प्रखरता के साथ सामने रखा है । विधवा जीवन के संबंध में प्रेमचंद ने इसमें विस्तार से लिखा है । इसमें पूर्णा की कहानी विधवा-जीवन का हृदय-विद्रावक चित्र उपस्थित करती है । ठीक पति की मृत्यु के पश्चात् पूर्णा किस तरह से हिन्दू-समाज के धर्मध्वजियों, पोंगा-पंथियों तथा विधवाओं की अस्मत से खेलनेवालों की शिकार बनती हैं, यह सब इतने यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया गया है कि विधवा-जीवन की सारी दयनीयता, सारी विवशता एवं सारी दुर्बलता को सामने ला लेता है । पूर्णा का जीवन एक

त्र ग है जिसमें हिन्दू-विधवा का यथार्थ स्वरूप देखा जा सकता ।

कमलाप्रसाद पूर्णा के पति पं.वसंतकुमार का मित्र है । वसंतकुमार की मृत्यु के बाद वह अपने दकियानूस पिता बदरीप्रसाद से राय लेकर पूर्णा की सहायता करने जाता है । पूर्णा के माँ-बाप पहले ही मर चुके थे । मामा ने किसी प्रकार विवाह किया था । ससुराल में भी कोई सगा न था । ऐसी स्थिति में पड़ोसी धर्म के नाते बदरीप्रसाद उसके पालन-पोषण के लिए कुछ प्रबंध करना चाहते हैं । इसी सिलसिले में वे पूर्णा को अपने घर में ही रखने का प्रस्ताव भी करते हैं । यह प्रस्ताव कमलांप्रसाद को अच्छा नहीं लगता क्योंकि उसमें आर्थिक हानि थी । फिर भी पिता के भय के कारण वह पूर्णा के घर पहुँचता है, लेकिन यही सोचकर कि किसी भाँति पूर्णा को यहाँ से टाल दूँ, मैके चले जाने के लिए प्रेरित करूँ । प्रेमचंद लिखते हैं - "उसे इसकी ज़रा भी चिन्ता न थी कि इस अबला का भविष्य क्या होगा ! उसका निर्वाह कैसे होगा, उसकी रक्षा कौन करेगा, उसका उसे लेशमात्र भी ध्यान न था ।" और जब वह पूर्णा को देखता है, उसकी कृतज्ञता और विनय से भरी सजल आँखों को देखता है, उसकी सरल निष्कलंक दीनमूर्ति को देखता है, तो अपनी कुटिलता पर क्षणिक लज्जित होता है । लेकिन उसकी यह लज्जा पूर्णा के सौन्दर्य और यौवन को देखकर छूमन्तर हो जाती है, और अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए वह बड़ी-बड़ी बातें करके सीधी और मूक पूर्णा को अपने घर ले जाने के लिए राजी कर लेता है । समाज में दूसरों की दुर्बलताओं और विषमताओं से लाभ उठानेवाले विधवाओं को पहले अपना लक्ष्य बनाते हैं । सीधी स्त्रियाँ पूर्णा की तरह उनकी प्रशंसत्मक छल भरी बातों में आसानी से फँस जाती हैं । पूर्णा भी कमलाप्रसाद के जाल में धीरे-धीरे फँसने लगती है । प्रेमचंद लिखते हैं "आश्रयविहीन अबला के लिए इस समय तिनके का सहारा ही बहुत था, वह नौका की कैसे अवहेलना करती, पर वह क्या जानती थी कि यह उसे उबारनेवाले नौका नहीं, वरन् एक

विचित्र जलजन्तु है, जो उसकी आत्मा को निगल जायगा ।'' चलकर यही होता है । पूर्णा और कमलाप्रसाद की पत्नी सुमित्रा के बीच साड़ी के प्रश्न पर संदेह का वातावरण बन जाता है । कुवासनाओं में लिपटा हुआ कमलाप्रसाद सुमित्रा का अपमान करता है और दिन-रात पूर्णा के फँसाने के कुचक्र रचता रहता है । सुमित्रा पूर्णा को एक स्थान पर सचेत भी करती है, जब पूर्णा कमलाप्रसाद के बारे में कहती है - ''बहन तुम कैसी बातें करती हो ? एक तो ब्राह्मणी, दूसरे विधवा, फिर नाते से बहन, मुझे यह क्या कृदृष्टि से देखेंगे ? फिर उनका कभी ऐसा स्वभाव नहीं रहा ।''

सुमित्रा पान लगाती हुई बोली, **''स्वभाव की न कहो पूर्णा, स्वभाव किसी के माथे पर नहीं लिखा होता । जिन्हें तुम बड़ा संयमी समझती हो, वह छिपे रुस्तुम होते हैं । उनका तीर मैदान में नहीं, घर में चलता है ।''**

पूर्णा सोचती है - **''वैधव्य क्या कलंक का दूसरा नाम है ।'' प्रेमचंद विधवा की दयनीयता के संबंध में लिखते हैं - ''विधवा पर दोषारोपण करना कितना आसान है । जनता को उसके विषय में नीची से नीची धारणा करते देर नहीं लगती । मानों कुवासना ही वैधव्य की स्वाभाविक वृत्ति है । मानों विधवा हो जाना, मन की सारी दुर्वासनाओं, सारी दुर्बलताओं का उमड़ आना है ।''**

पराधीन पूर्णा धीरे-धीरे कमलाप्रसाद के चंगुल में आने लगती है । एक रात उसकी कामुकता का शिकार होते-होते बचती है । पूर्णा के ये शब्द विधवा के अभिशप्त जीवन को कितना स्पष्ट कर देते हैं - **''अब जाने दो बाबूजी, क्यों मेरा जीवन भ्रष्ट करना चाहते हो । तुम मर्द हो, तुम्हारे लिए सब कुछ माफ़ है । मैं औरत हूँ, मैं कहाँ जाऊँगी ? डूब मरने के सिवा मेरे लिए कोई उपाय न रह जायगा । मैं तो आज मर भी जाऊँ तो किसी की कोई हानि न होगी, वरन् पृथ्वी का कुछ बोझ ही हलका होगा ।''** पूर्णा का

जीवन एंक समस्या बन जाता है । वह उसके घर से निकल जाने का निश्चय करती है - ''संसार में लाखों विधवाएँ पड़ी हैं, क्या सभी के रक्षक बैठे हैं ? किसी भाँति उनके दिन भी कटते ही हैं । मेरे भी उसी भाँति कट जाएंगे और फिर कहीं आश्रय नहीं है, तो गंगा तो कहीं नहीं गयी है ।'' वह विधवा आश्रम जाने का निश्चय करती है परंतु झमेला बढ़ने के भय से रुक जाती है । वह सोचती है, ''तरह-तरह के संदेह लोगों के मन में पैदा होंगे । अभी कम से कम लोगों को मुझ पर दया आती है, फिर तो कोई बात भी नहीं पूछेगा । विधवा को कुलटा बनते कितनी देर लगती है ? '' निदान वह वही, उसी वातावरण में ही रहती है । कमलाप्रसाद जब छल-बल से पूर्णा का सतीत्व हरण नहीं कर पाता तब वह उसे धोखे से एकान्त बँगले में ले जाता है और वहाँ बलात्कार करने को उद्यत हो जाता है । पूर्णा कमलाप्रसाद को घायल कर देती है और बँगले से बाहर सड़क पर निकल आती है । प्रेमचंद विधवा के करुण जीवन का यहाँ चरमोत्कर्ष ला देते हैं । वे कहते हैं, ''अब उसके लिये कहाँ आश्रय था ? एक ओर जेल की दुस्सह यंत्रणाएँ थीं, दूसरी ओर रोटियों के लाले, आँसुओं की धार, और घोर प्राणपीड़ा । ऐसे प्राणी के लिए मृत्यु के सिवा और कहाँ ठिकाना है ।'' पूर्णा के जीवन की निराशा अपने अंतिम छोर पर पहुँच जाती है । वह सोचती है -''अपने पति के बाद ही उसने क्यों न प्राण का त्याग किया ? क्यों न उसी शव के साथ सती हो गई ? इस जीवन से तो सती हो जाना कहीं अच्छा था ।''

ये केवल ''पूर्णा'' की ही जीवन कहानी नहीं है वरन् हज़ार-हज़ार हिन्दू नारियों की कहानी है । युवा विधवा हिन्दू-समाज में एक बहुत बड़ी समस्या है । प्रेमचंद समस्यामूलक उपन्यासकार होने के नाते यह सामाजिक समस्या भी पूरी उग्रता और भीषणता से उपस्थित की गई हे । कमलाप्रसाद और कमलाप्रसाद से अधिक घृणित मनोवृत्तिवाले मनुष्यों का समाज में अभाव नहीं है । विधवाओं को ऐसा समाज व्यभिचार तथा

वेश्यावृत्ति का पात्र समझता है । अथवा सम्भ्रान्त परिवारों में आर्थिक विवशता में विधवाएँ अपमानित जीवन का बोझ ढोती हैं ।

अब प्रश्न यह आता है कि इस समस्या का हल क्या है ? प्रेमचंद ने समस्या की गंभीरता को ही हमारे सामने नहीं रखा है, वरन् उसके हल के संबंध में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं । वस्तुतः देखा जाय तो विधवा-समस्या के हल न होने का मुख्य कारण आर्थिक है । विधवा-विवाह आर्थिक सहायता के निमित्त है, क्योंकि हमारे समाज की बनावट ही कुछ ऐसी है कि यहाँ स्त्रियाँ नौकरी करना अपमान की बात समझी जाती हैं । फिर बिना पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ किस प्रकार साधारण कार्य करने को प्रस्तुत हो सकती हैं । ऐसी परिस्थिति में विधवा-विवाह विधवा का उद्धार कर देता है । यदि स्त्रियों में शिक्षा का यथेष्ट प्रचार हो जाय और वे नौकरी कर सकें तो विधवा जीवन की सारी दमनीयता स्वतः मिट जायगी । स्त्रियों में आज यह प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है । प्रेमचंद के समय यह स्थिति न थी । आजकल विधवा-विवाह भी एक साधारण-सी बात समझी जाती है । लेकिन प्रेमचंद के समय विधवा से विवाह करना बड़ा भारी क्रांतिकारी कार्य समझा जाता था । विधवा समस्या को हल करने के लिए प्रेमचंद ने दो उपाय बताये हैं -

1. विधवा विवाह
2. वनिता-आश्रम की स्थापना ।

विधवा-विवाह हिन्दू विधवा नारी की समस्या का एक सफल हल है । आज के हिन्दू, समाज को देखते हुए इसे सामयिक कदम भी कहा जा सकता है । आज की हिन्दू-स्त्रियाँ बहुत कम साक्षर है, दूसरे सामाजिक और नैतिक बन्धनों में वे इतनी अधिक जकड़ दी गयी है कि अधिकांश पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी अपनी कोई स्वतंत्र आर्थिक व्यवस्था नहीं कर सकतीं । आर्थिक दृष्टि से आधार रहित विधवाओं को यदि देश के युवक अपनाते हैं तो सोंमाजिक स्थिति को देखते हुए समस्या के हल की दिशा में उनका यह एक

महत्वपूर्ण कदम होगा । माना कि विधवा-विवाह हिन्दू-नारी की पराधीनता का उपचार नहीं है, पर प्रेमचंद के समय के हिन्दू-समाज के लिये यह क्रांतिकारी कार्य था ।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने विधवा-विवाह के संबंध में विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये हैं । इस उपन्यास का प्रारंभ ही इस प्रश्न को लेकर होता है । काशी के आर्य-मंदिर में पंडित अमरनाथ का व्याख्यान हो रहा है । पंडित अमरनाथ उपस्थित जनसमूह के उस भाग से जिसे पत्नी वियोग हो चुका है, पूछते हैं, आप लोगों में कितने महाशय हैं, जो वैधव्य के भंवर में पड़ी हुई अबलाओं के साथ अपने कर्तव्य का पालन करने का साहस रखते हैं । कृपया वे हाथ उठाये रहे । अरे, यह क्या ? एक भी हाथ नज़र नहीं आता । हमारा युवक समाज इतना कर्तव्यशून्य, इतना साहसहीन है ।'' यह समाज की स्थिति है । विधवा-विवाह करने की न तो समाज में इच्छा है, और न साहस । प्रेमचंद कर्तव्यपालन के लिये अमृतराय को सामने लाते है, और विधवा-समस्या का हल व्यक्तिगत रूप में प्रस्तुत करते हैं कि यदि जिसकी पहली स्त्री मर गई हो, तो वह विधवा से विवाह करें । यह हल वैयक्तिक ही नहीं, नैतिकता से भी संबंध रखता है । समाज का यदि नैतिक स्तर उठ जाता है तब तो यह या इसके समान अनेक समस्याएँ अपने आप हल हो जाती हैं । प्रस्तुत विषय पर अमृतराय और प्रो.दाननाथ में जो वार्तालाप होता है वह इस प्रकार है - ''यह अच्छा सिद्धांत है कि जिसकी पहली स्त्री मर गई, वह विधवा से विवाह करें ।

अमृतराय : न्याय तो यही कहता है ।

दाननाथ : बस, तुम्हारे न्याय पथ पर चलने ही से तो सारे संसार का उद्धार हो जायगा । तुम अकेले कुछ नहीं कर सकते । हाँ नक्कू बन सकते हो ।

अमृतराय ने दाननाथ को सगर्व नेत्रों से देखकर कहा - आदमी अकेला भी बहुत कुछ कर सकता है । अकेले आदमियों ने ही आदि से विचारों में क्रांति पैदा की है । अकेले आदमियों के

कृत्यों से सारा इतिहास भरा पड़ा है। कुछ नहीं कर सकत
यह मैं न मानूँगा ।''

निःसन्देह व्यक्तिगत रूप से विधवा-विवाह विधवा-समस्या
सुलझाने में सामयिक और आंशिक सहायता कर सकता है ।
वह भी एक दुर्लभ कार्य है, कम से कम प्रेमचंद के समय तो
ही । विधवा-विवाह के विरोधियों का अच्छा-खासा दल विद्यमान
जो इसे पाठ ठहराता था और धर्म दुहाई देकर इसका बुरे से
शब्दों में खुला विरोध करता था । इस उपन्यास में प्रेमा के
बदरीप्रसाद ऐसे समाज के प्रतीक हैं । लाला बदरीप्रसाद वि
विवाह का विरोध करते हुए कहते हैं - ''मैं समझता हूँ, इ
हमारा समाज नष्ट हो जाएगा, हम इससे कहीं अधोगति को प
जाएँगे, हिन्दुत्व का रहा-सहा चिह्न भी मिट जाएगा ।'' -
चलकर जब उन्हें मालूम पड़ता है कि अमृतराय ने विधवा वि
करने की प्रतिज्ञा की है तब तो वे समझे हैं, ''अमृतराय ने तो
डोंगा ही डुबो दिया ।'' बदरीप्रसाद का पुत्र कमलाप्रसाद
अमृतराय की इस प्रतिज्ञा पर व्यंग करता है, ''मैं तो समझता
इसमें कुछ समझ होगी । मगर निरा पोंगा निकला ।.... तो
विधवा भी ठीक हो गई कि नहीं, कहाँ है मिसराइन, कह दो
तुम्हारी चाँदी है, कल ही सन्देशा भेज दें । कोई और न जाय
मैं जाने को तैयार हूँ । बड़ा मजा रहेगा । कहाँ है मिसरानी,
उनके भाग्य चमके । रहेगी बिरादरी की ही विधवा न ?
बिरादरी की भी कैद नहीं रही ? '' ये वे सारी रुकावटें हैं
विधवा-समस्या के हल में सामने आती हैं । प्रेमचंद ने उन स
अच्छा चित्रण किया है लेकिन हज़ार रुकावटों के होते हुए
प्रेमचंद समाज को आगे बढ़ाते हैं । प्रेमा और अमृतराय
सत्पात्रों को गढ़ते हैं । प्रेमा अपनी माँ देवकी से कहती है -
सुशिक्षित पुरुष अगर यह काम न करेंगे तो कौन करेगा ?
तक ऐसे लोग साहस से काम न लेंगे, हमारी अभागिनी बहन
रक्षा कौन करेगा ? '' स्वयं प्रेमचंद ने जो विधवा विवाह किय
इस हल पर उनकी आस्था का द्योतक है ।

इस उपन्यास में पूर्णा हिन्दू-विधवा की प्रतीक है । लाला बदरीप्रसाद उसे अपने घर रखने को सच्चे हृदय से प्रस्ताव रखते हैं, ''मैं सोच रहा हूँ, पूर्णा को अपने ही घर में रखूँ तो क्या हरज है ? अकेली औरत कैसे रहेगी ? '' आगे चलकर पूर्णा उनके घर में आ भी जाती है । पर स्वयं प्रेमचंद यह अच्छी तरह बता देते हैं कि विधवा की रक्षा का यह कोई हल नहीं है । पूर्णा का आगामी जीवन जो रूप लेता है वह लाला बदरीप्रसाद की इस दया को बेकार कर देता है ।

विधवा-समस्या के हल का दूसरा उपाय प्रेमचंद 'वनिता-आश्रम' की स्थापना द्वारा बताते हैं । यह उपाय वैयक्तिक तो नहीं है, पर आदर्शवादी रूप अवश्य लिए हुए है । प्रेमचंद के आलोचकों ने उनके इस आदर्शवाद की खूब खिल्ली उड़ाई है । पर वे यह भूल जाते हैं कि प्रेमचंद के समय के समाज में इससे बड़ा यथार्थवादी, व्यावहारिक कदम और क्या हो सकता था ? 'वनिता-आश्रम' खोलने जा रहे हैं । कमलाप्रसाद उन पर टिप्पणी करता है - ''मकाने का नया ढंग निकाला है । बदरीप्रसाद ने ज़रा माथा सिकोड़कर पूछा, ''कमाने का ढंग कैसा, मैं नहीं समझा ।'' कमलाप्रसाद वही जो और लीडर करते हैं । ''वनिता-आश्रम में विधवाओं का पालन-पोषण किया जायगा । उन्हें शिक्षा भी दी जाएगा । चन्दे की रकमें आयेंगी, और यार लोग मौज़ करेंगे । कौन जानता है ... कहाँ से कितने रुपये आये ? महीने भर में एक झूठा-सच्चा हिसाब छपवा दिया ।'' दकियानूसी समाज का प्रतीक लाला बदरीप्रसाद ''वनिता-आश्रम'' जैसी संस्थाओं पर और भी घृणित विचार रखते हैं ''आपको (अमृतराय) कन्हैया बनने की धुन है । दस बीस जवान विधवाओं को इधर-उधर से एकत्र करके रामलीला रचायेंगे । चार-दीवारी के अंदर कौन देखता है, क्या हो रहा है ।''

प्रेमचंद यह भलीभाँति बता देते हैं कि समाज उक्त समस्या पर अपने क्या विचार रखता है, पर वे उसक समाज का समर्थन

नहीं करते । समाज की प्रगतिशील शक्तियों का साथ देते हैं । अमृतराय द्वारा "वनिता आश्रम" की स्थापना करके समाज को गति देते हैं, उसे सोचने समझने के लिए संकेत करते हैं । मात्र बौद्धिक सहानुभूति प्रकट करके नहीं रह जाते । 'वनिता आश्रम' की आवश्यकता वे प्रेमा के भाषण से व्यकत करते हैं - "यह सभा आज इसलिये की गयी है कि आपसे इस नगर में एक ऐसा स्थान बनाने के लिये सहायता माँगी जाय, जहाँ हमारी अनाथ, आश्रयहीन, बहनें, अपनी मान-मर्यादा की रक्षा करते हुए शांति से रह सकें । कौन ऐसा मुहल्ला है, जहाँ ऐसी दस-पाँच बहनें नहीं हैं । उनके ऊपर जो बीतती है, वह क्या आप अपनी आँखों से नहीं देखते ? कम से कम अनुमान तो कर ही सकते हैं । वे जिधर आँखें उठाती हैं, उधर ही उन्हें पिशाच खड़े दिखायी देते हैं, जो उनकी दीनावस्था को अपनी कुवासनाओं के पूरा करने का साधन बना लेते हैं । हमारी लाखों बहनें इस भाँति केवल जीवन-निर्वाह करने के लिए पतित हो जाती हैं । क्या आपको उनपर दया नहीं आती ? मैं विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि अगर उन बहनों को रूखी रोटियाँ और मोटे कपड़ों का भी सहारा हो, तो वे अंत समय तक अपने सतीत्व की रक्षा करती रहें । स्त्री हारे दर्जे दुराचारिणी होती है । अपने सतीत्व से अधिक उसे संसार की और किसी वस्तु पर गर्व नहीं होता न वह किसी चीज़ को इतना मूल्यांकन समझती है ।"

इस प्रकार विधवा-समस्या पर प्रेमचंद जैसे जागरूक लेखक ने जो कुछ लिखा है, वह हिन्दू-समाज को एक चुनौती है । उनका सुधारवादी दृष्टिकोण आज भी अनुकरणीय है ।

गौण समस्या के अंतर्गत वैवाहिक समस्या का इस उपन्यास में पहला स्थान है । हिन्दू-समाज में वैवाहिक समस्या को सबसे अधिक जटिल दहेज़-प्रथा ने बनाया है । इस पर प्रेमचंद ने "प्रतिज्ञा" में पर्याप्त लिखा है । यहाँ उन्होंने दहेज के मूल कारण पर प्रकाश डाला है । सुमित्रा और पूर्णा के निम्नलिखित वार्तालाप

से इस तथ्य का उद्‌घाटन किया गया है - "सुमित्रा मजा तो तभी आये, जब लड़कीवाले भी लड़कियों का दहेज लेने लगे । बिना भरपूर दहेज़ लिए विवाह ही न करें । तब पुरुषों के होश ठिकाने आ जायें । मेरा तो अगर बाबूजी विवाह न करते, तो मुझे कभी इसका ख्याल भी न आता । मेरी समझ में यही बात नहीं आती कि लड़कीवालों को ही लड़की ब्याहने की इतनी गरज़ क्यों होती है ?"

पूर्णा : तुम बहन, बच्चों की सी बातें करती हो । लड़कियों के विवाह में साल दो साल का विलंब हो जाता है, तो चारों ओर हँसी होने लगती है । लड़कों का विवाह कभी न हो, तो भी कोई नहीं हँसता । लोक-रीति भी कोई चीज़ है ।" यहाँ प्रेमचंद ने लोक-रीति का उल्लेख करके वर्तमान सामाजिक संगठन की निन्दा की है । दहेज़-प्रथा कानून से बिलकुल नहीं मिटाई जा सकती । कानून बना देने पर वह कोई और शक्ल में सामने आ जाएगी । आवश्यकता लोक-रीति को बदलने की है ।

माता-पिता अपनी लड़की का विवाह कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं । लड़की का विवाह करके वे मानों अपने सिर से बहुत बड़ा बोझ उतार कर निश्चिंत हो जाते हैं । यदि विवाह असफल रहा तो उसके लिए अपने दोष न देखकर भाग्य को कोसते हैं । इसका मुख्य कारण सामाजिक व्यवस्था है, जहाँ लड़की का विवाह अधिक दिन रोके रखना कलंक की बात समझी जाती है । इसी उपन्यास में लेखक का कहना है "जवान लड़की बैठी रहे, यह कुल के लिये और धोर अपमान की बात थी । अतः "कुल मर्यादा" की रक्षा के लिये कुपात्र के साथ भी लड़कियों का विवाह करवा दिया जाता है और बाद में भाग्य की आड़ में माता पिता अपने दब्बूपन और आलास्य को छिपाने का प्रयत्न करते हैं । "प्रतिज्ञा" में सुमित्रा और कमलाप्रसाद का विवाह इसका जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है ।

यों "प्रतिज्ञा" प्रारंभ में दुहाजू नायक निश्चय करता है कि वह वैधव्य के भैवर में पड़ी हुई अबला के साथ अपने कर्तव्य का पालन करेगा । वह विधवा-विवाह करेगा और विधवा से विवाह कर्तव्यपालन के रूप में करेगा ।

"प्रतिज्ञा" में विवाह के प्रश्न पर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है । "प्रतिज्ञा" में एक जोड़ा है - वसंतकुमार और पूर्णा का, एक है कमलाप्रसाद और सुमित्रा का, एक अन्य दाननाथ और प्रेमा का ।

वसंतकुमार और पूर्णा एक अत्यंत सुखी दम्पति हैं, जिन्हें अपनी गरीबी में भी संतोष का धन प्राप्त है, क्योंकि दोनों में प्रेम है, सामंजस्य है । दुर्भाग्य इस परिवार से खिलवाड़ करता है, और पूर्णा विधवा हो जाती है ।

कमलाप्रसाद और सुमित्रा के बीच सामंजस्य नहीं है । इसके कारण का विश्लेषण करते हुए प्रेमचंद कहते हैं - "आज से तीन साल पहले सुमित्रा ने कमला को पाकर अपने को धन्य माना था । दो तीन महीने उसके दिन सुख से कटे । लेकिन ज्यों-ज्यों दोनों की प्रकृति का विरोध प्रकट होने लगा, दोनों एक दूसरें से खिंचने लगे । ..... सुमित्रा में नम्रता, विनय और दया थी कमला में घमन्ड, उच्छृंखलता, और स्वार्थ । एक वृक्ष का जीव था, दूसरा पृथ्वी पर रेंगनेवाला । उनमें कैसे मैल होता । धर्म का ज्ञान जो दांपत्य-जीवन का सुखमूल है, दोनों में किसी को भी न था ।"

प्रेमा यद्यपि अमृतराय को प्यार करती थी तो दाननाथ के साथ विवाह के पश्चात् वह उसके घर आकर उसीकी हो गयी । जबकि एक प्रसंग में प्रेमा अपने सामाजिक आदर्श के लिए पति के विरुद्ध अमृतराय का समर्थन करती है, परंतु उसे अपने सत्कर्म का इतना विश्वास है कि वह जानती है कि पति को मना लूँगी ।

प्रेमचंद प्रारंभ में विवाह को धर्म-बंधन मानते थे । प्रेमचंद ने "प्रतिज्ञा" में आदर्श माता-पिता का भी समावेश किया है । इसमें

प्रेमा का महा दकियानूस पिता बद्रीप्रसाद भी इस मामले में काफ़ी उदार हैं । प्रेमचंद लिखते हैं कि ''बदरीप्रसाद विवाह के विषय में उसकी अनुमति आवश्यक समझते थे ।''

हमारे समक्ष अब प्रश्न यह उठता है कि वैवाहिक समस्या का क्या हल है ? प्रेमचंद ने जहाँ एक ओर युवकों को नैतिक दृढ़ता का संदेश दिया है और उनके सामने आदर्श पात्र उपस्थित किए हैं, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने युवतियों को भी वर्तमान समाज-व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने के लिये ललकारा है । प्रेमचंद ने वैवाहिक समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार करने के बाद समाज के सामने जो रास्ता रखा है वह कोई कानून का रास्ता नहीं हे, और न वह अव्यावहारिक ही है । समाज के नैतिक मूल्यों में परिवर्तन हुए बिना प्रस्तुत समस्या का कोई ठोस और स्थायी हल मिलना असंभव नहीं तो, दुर्लभ अवश्य है ।

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने अछूत-समस्या का भी उद्‌घाटन किया है । छुआछूत हिन्दू-समाज की एक भयंकर बीमारी है । धार्मिक अंधविश्वासों द्वारा पोषित छुआछूत की भावनाएँ हिन्दू समाज के अधिकांश जनों में व्याप्त हैं । वे लोग चाहे अपढ़ ग्रामीण स्त्री-पुरुष हों या पढ़े लिखे नागरिक । दोनों अपने को इस सामाजिक कुरीति से मुक्त नहीं कर सकें हैं । प्रेमचंद छुआछूत के विरुद्ध थे । मनुष्य मनुष्य के बीच यह अंतर अमानवीय है । प्रेमचंद ने हिन्दू समाज में पाये जानेवाले इस अमानवीय भाव को दूर करने और अछूत-वर्ग के स्वाभिमान को जाग्रत करने का भरसक प्रयत्न किया है । ''प्रतिज्ञा'' में यत्र तत्र उपन्यासकार ने इस समस्या का उद्‌घाटन किया है ।

निष्कर्ष के तौर पर हम कह सकते हैं कि 'प्रतिज्ञा' में विधवा की समस्या, स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता की समस्या, विवाह की समस्या तथा अछूतों की समस्या पर उपन्यासकार ने अपने विचार प्रकट किये है । मूलतः समस्यामूलक उपन्यासकार होने के नाते उपन्यासकार प्रेमचंद ने न केवल उपरोक्त समस्याओं

का उद्‌घाटन किया परंतु उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है । जैसे प्रारंभ में स्पष्ट कर दिया गया है । प्रस्तुत "प्रतिज्ञा" उपन्यास सामाजिक उपन्यास है । इस उपन्यास की सामाजिकता उपरोक्त समस्याओं पर ही आधारित है । विधवा-समस्या इसमें प्रधान है, इसके साथ साथ विवाह की समस्या, स्त्रियों की आर्थिक पराधीनता की समस्या, दहेज की समस्या, बराबर दौड़ती हैं और छोटी-छोटी समस्याओं की ओर तो लेखक का ध्यान सदैव बना रहा है । जहाँ भी अवसर मिलता है प्रेमचंद इन समस्याओं को बिना छुए नहीं रहे हैं । प्रेमचंद का उद्देश्य ही भारत की इन सामाजिक आर्थिक, समस्याओं को प्रस्तुत करना ही है । समस्याओं का प्रश्न प्रधान है । शेष बातें समस्याओं को ही केन्द्र मानकर इस उपन्यास में बढ़ती हैं और संकुचित होती हैं । बिना इस उद्देश्य को सम्मुख रखे प्रस्तुत उपन्यास का शास्त्रीय अध्ययन करना असंगत होगा । वास्तव में समस्याओं के अध्ययन को ही केन्द्र-बिन्दु मान लेना चाहिए ।

4.7. बोध प्रश्न

1. 'अमृतराय' का चरित्र-चित्रण कीजिए ।
2. 'पूर्णा' का चरित्र-चित्रण कीजिए ।
3. 'प्रतिज्ञा' में चित्रित समस्याओं के बारे में प्रकाश डालिए ।

Karnataka State Open University

Mukthagangothri, Mysore - 570 006

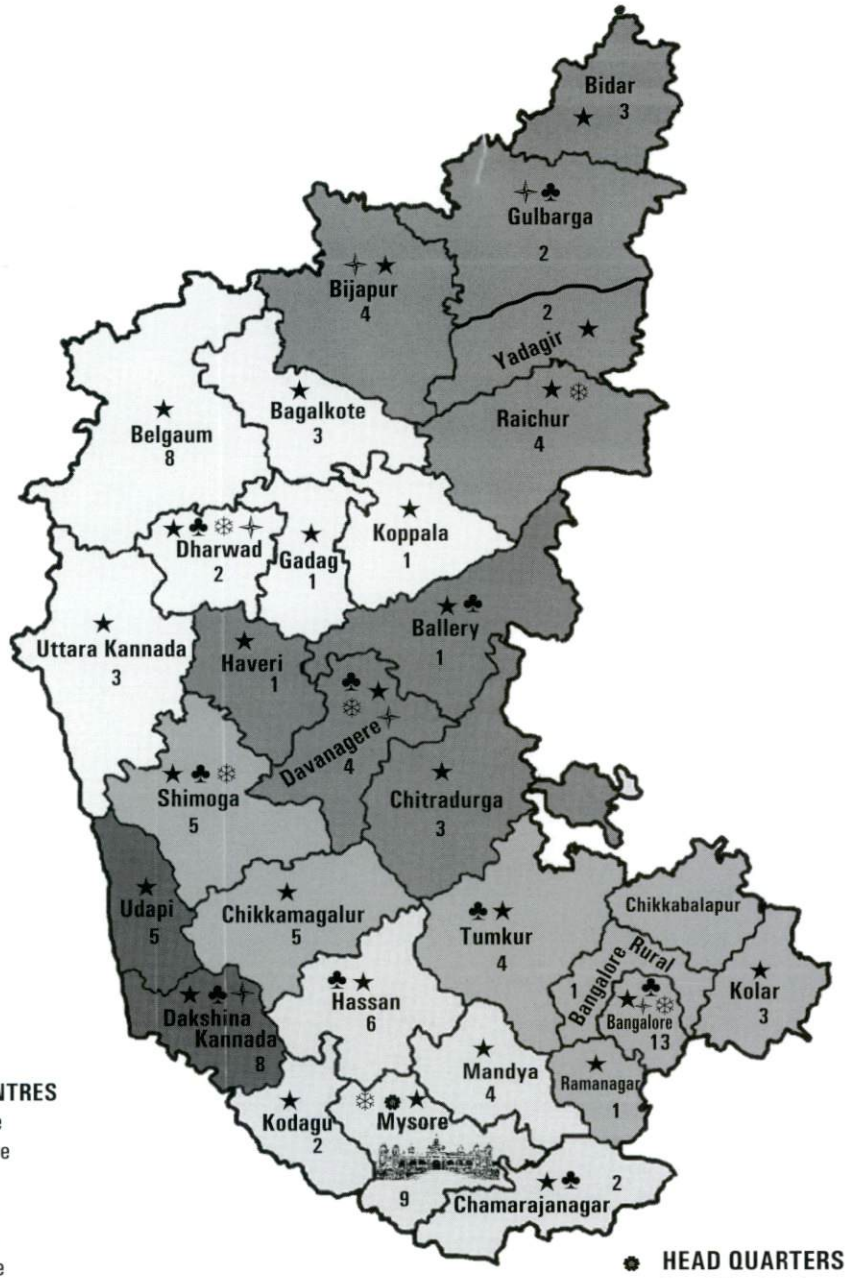

♣ **REGIONAL CENTRES**

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

HEAD QUARTERS
Total Study Centres : 111
Regional Centres : 10
B.Ed Study Centres : 10
M.Ed Study Centres : 08

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕ.ರಾ.ಮು.ವಿ./ಅ.ಸಾ.ವಿ./4-061/2013-2014 ದಿನಾಂಕ : 23.12.2013
ಒಳಪುಟ :60 GSM ಮ್ಯಾಪ್ಲಿತೊ ಕಾಗದ ಮತ್ತು ರಕ್ಷಾಪುಟ :170 GSM ಮ್ಯಾಟ್ ಆರ್ಟ್ ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು :ವಿನಾಯಕ ಆಫ್‌ಸೆಟ್ ಪ್ರಿಂಟರ್ಸ್, ಬೆಂಗಳೂರು–560 070 ಪ್ರತಿಗಳು :1600

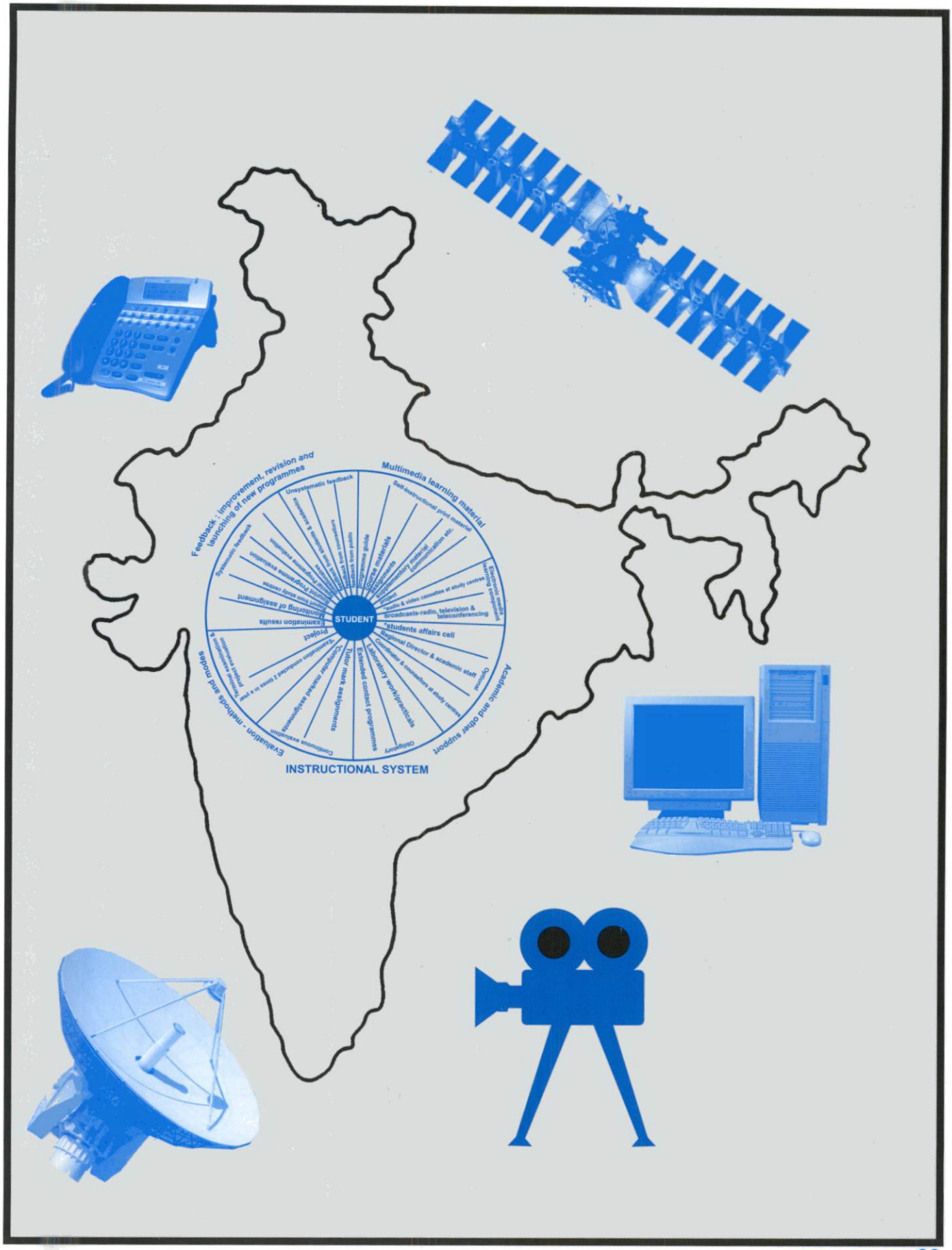
Multimedia learning material
Academic and other support
Evaluation - methods and modes
Feedback : improvement, revision and launching of new programmes
STUDENT
INSTRUCTIONAL SYSTEM